प्रकाशक :—
श्री जैन सभा
७, शम्भू मल्लिक लेन, कलकत्ता।

मूल्य दो रुपया

मुद्रक :—
नवरतनमल सुराना
सुराना प्रिंटिंग वर्क्स
४०२, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता।

प्रकाशक :—
श्री जैन सभा
७, शम्भू मल्लिक लेन, कलकत्ता।

मूल्य दो रुपया

सुराना प्रिंटिंग वर्क्स
४०२, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता।

तीर्थयात्रा के अतिरिक्त प्राचीन गौरव गाथा को सुनने देखने की दृष्टि से जाने वाले महानुभाव पद २ यह अनुभव करते हैं कि इन उपत्यकाओं के कोने २ में मानों अतीत की अमिट स्मृतियां विद्यमान हैं एवं आगंतुक को कहती हैं कि हमारी भी बात सुन जाओ यहां किसी दिन देश की रक्षा की बातें हुआ करती थीं, यहां दार्शनिक विवेचन का केन्द्र था, यहां नागरिक अपनी सुख दुख कहानी कहा करते थे, यहां किसी महात्मा का निवास था, यहां कला कौशल की प्रतियोगिता हुआ करती थी तो यहां किसी के भाग्य का निर्णय हुआ करता था। किसी को शायद यह ध्वनि भी सुनाई दे कि भौतिक विकास की ओर दौड़ती हुई आज की प्रगति को, ऐ नये मानव ! जरा सी मोड़ ले और आध्यात्मिक विकास की ओर ले जा, अन्यथा भावी विनाश को नहीं रोक सकोगे और हमारी ही तरह एक दिन कोई दूसरा ही तुम्हारी मृत्यु गाथा सुनेगा।

राजगृहने महावीर एवं गौतम बुद्ध के उपदेश अपने वक्षस्थल में अंकित कर रखे हैं। त्याग एवं सेवा की अन्यतम अनेक विभूतियां वहां अपना मधुर गीत गा चुकी हैं। आज भी उन्हीं गाथाओं को लेकर वह श्मशान भूमि जीवित है मरी नहीं। मरी हुई कौन कह सकता है उसे जहां अतीत की लुभावनी स्मृतियां जाग उठती हों, जहां पद २ पर गौरव गाथा लिखी हो उस पुण्य भूमि राजगृह को अपनी श्रद्धा प्रगट करते हुए प्रत्येक भारतीय का मुख गौरवान्वित हो जाता है।

तीर्थयात्रा के अतिरिक्त प्राचीन गौरव गाथा को सुनने देखने की दृष्टि से जाने वाले महानुभाव पद २ यह अनुभव करते हैं कि इन उपत्यकाओं के कोने २ में मानों अतीत की अमिट स्मृतियाँ विद्यमान हैं एवं आगंतुक को कहती हैं कि हमारी भी बात सुन जाओ यहां किसी दिन देश की रक्षा की बातें हुआ करती थीं, यहां दार्शनिक विवेचन का केन्द्र था, यहां नागरिक अपनी सुख दुख कहानी कहा करते थे, यहां किसी महात्मा का निवास था, यहां कला कौशल की प्रतियोगिता हुआ करती थी तो यहां किसी के भाग्य का निर्णय हुआ करता था। किसी को शायद यह ध्वनि भी सुनाई दे कि भौतिक विकास की ओर दौड़ती हुई आज की प्रगति को, ऐ नये मानव ! जरा सी मोड़ ले और आध्यात्मिक विकास की ओर ले जा, अन्यथा भावी विनाश को नहीं रोक सकोगे और हमारी ही तरह एक दिन कोई दूसरा ही तुम्हारी मृत्यु गाथा सुनेगा।

राजगृहने महावीर एवं गौतम बुद्ध के उपदेश अपने वक्षस्थल में अंकित कर रखे हैं। त्याग एवं सेवा की अन्यतम अनेक विभूतियां वहां अपना मधुर गीत गा चुकी हैं। आज भी उन्हीं गाथाओं को लेकर वह श्मशान भूमि जीवित है मरी नहीं। मरी हुई कौन कह सकता है उसे जहां अतीत की लुभावनी स्मृतियाँ जाग उठती हों, जहां पद २ पर गौरव गाथा लिखी हो उस पुण्य भूमि राजगृह को अपनी श्रद्धा प्रगट करते हुए प्रत्येक भारतीय का मुख गौरवान्वित हो जाता है।

प्राक्कथन

महातीर्थ राजगृह धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होनेके साथ साथ अध्यात्मिक और अधिभौतिक उभय आरोग्यप्रद है। चिरकाल से भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों ने इस तीर्थ के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पण की है। यहां की अष्ट प्रातिहार्य युक्त एवं नवग्रहादि परिकर युक्त कुषाण गुप्त एवं पालकालीन जैन प्रतिमाएं भारतीय शिल्प के विकाश में अपना विशेष स्थान रखती हैं। इस पवित्र भूमि के गर्भ में सहस्राब्दियों की इतिहास सामग्री दबी पड़ी है जो उद्धार किये जाने पर विश्व संस्कृति में भारतीय संस्कृति को सर्वोच्च स्थान दिलाने का सामर्थ्य रखती है।

यह पुस्तिका राजगृह का इतिहास नहीं पर उसकी प्रस्तावना मात्र है सोलह और आठ वर्ष पूर्व लिए गये कुछ संक्षिप्त विवरण व लेखों की छापें पुरातत्वप्रेमी मुनिराज श्री कान्तिसागरजी एवं पूज्य काकाजी अगरचन्दजी नाहटा की सतत प्रेरणा से लिखागया एक निबन्ध मात्र है जिसने कुछ विस्तृत हो जाने पर पुस्तिका का रूप धारण कर लिया। इसका लेखन राजगृह से सैकड़ों मील दूर बीकानेर में हुआ है। शीघ्रतावश लिखी हुई पाण्डुलिपि ही प्रेस में दे दी गयी और वह उसी रूप में प्रकाशित हो रही है अतएव इसमें अनेकों स्खलन अनिवार्य है। विद्वान पाठकों से सूचना पाकर द्वितीयावृत्ति में संशोधन अवश्य वांछनीय है। राजगृह की प्राचीन शिलालिपि जो सोनभंडारके

प्राक्कथन

महातीर्थ राजगृह धार्मिक और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होनेके साथ साथ अध्यात्मिक और अधिभौतिक उभय आरोग्यप्रद है। चिरकाल से भारतीय एवं पाश्चात्य मनीषियों ने इस तीर्थ के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पण की है। यहां की अष्ट प्रातिहार्य युक्त एवं नवग्रहादि परिकर युक्त कुषाण गुप्त एवं पालकालीन जैन प्रतिमाएं भारतीय शिल्प के विकाश में अपना विशेष स्थान रखती हैं। इस पवित्र भूमि के गर्भ में सहस्राब्दियों की इतिहास सामग्री दबी पड़ी है जो उद्धार किये जाने पर विश्व संस्कृति में भारतीय संस्कृति को सर्वोच्च स्थान दिलाने का सामर्थ्य रखती है।

यह पुस्तिका राजगृह का इतिहास नहीं पर उसकी प्रस्तावना मात्र है सोलह और आठ वर्ष पूर्व लिए गये कुछ संक्षिप्त विवरण व लेखों की छापें पुरातत्वप्रेमी मुनिराज श्री कान्तिसागरजी एवं पूज्य काकाजी अगरचन्दजी नाहटा की सतत प्रेरणा से लिखागया एक निबन्ध मात्र है जिसने कुछ विस्तृत हो जाने पर पुस्तिका का रूप धारण कर लिया। इसका लेखन राजगृह से सैकड़ों मील दूर बीकानेर में हुआ है। शीघ्रतावश लिखी हुई पाण्डुलिपि ही प्रेस में दे दी गयी और वह उसी रूप में प्रकाशित हो रही है अतएव इसमें अनेकों स्खलन अनिवार्य है। विद्वान पाठकों से सूचना पाकर द्वितीयावृत्ति में संशोधन अवश्य वांछनीय है। राजगृह की प्राचीन शिलालिपि जो सोनभंडारके

१९ श्री मुनिसुव्रतस्वामीजी श्वेताम्बर मन्दिर ।

२० श्री पानीघर श्वेताम्बर

२१ श्री गौतमस्वामीजी (११ गणधर चरण) श्वेताम्बर मन्दिर ।

२२ सप्तधारा ब्रह्मकुण्ड इत्यादि ।

२३ सरस्वती नदी पुल

२४ सूर्य कुण्ड इत्यादि ।

२५ बौद्ध मन्दिर धर्मशाला ।

२६ श्री दिगम्बर मन्दिर धर्मशाला ।

२७ श्री जैन श्वेताम्बर गांव मन्दिर ।

२८ श्री जैन श्वेताम्बर धर्मशाला

२९ वैतरणी ।

---

१९ श्री मुनिसुव्रतस्वामीजी श्वेताम्बर मन्दिर।

२० श्री पानीधर श्वेताम्बर

२१ श्री गौतमस्वामीजी
(११ गणधर चरण)
श्वेताम्बर मन्दिर।

२२ सप्तधारा ब्रह्मकुण्ड इत्यादि।

२३ सरस्वती नदी पुल

२४ सूर्य कुण्ड इत्यादि।

२५ बौद्ध मन्दिर धर्मशाला।

२६ श्री दिगम्बर मन्दिर धर्मशाला।

२७ श्री जैन श्वेताम्बर गांव मन्दिर।

२८ श्री जैन श्वेताम्बर धर्मशाला

२९ वैतरणी।

विहार प्रान्त के पटना और गया जिलों को प्राचीन मगध कहा जाता है। जैन शास्त्रों में वर्णित २५॥ आर्य देशों व १६ जनपदों में इसकी मुख्य रूप से गणना हुई है—एवं भारत की १० प्रमुख राजधानियों * में एक राजगृह भी है। मगध देशको भारत के प्रधान तीर्थों में वतलाया गया है। श्रमण संस्कृति के अत्यधिक प्रचार के कारण ही संभवतः इसे ब्राह्मण-ग्रन्थों में पापभूमि कहा गया पर उनके महाभारत, वायुपुराणादि धर्मग्रन्थ इस पवित्र भूमि को पतित पावन मानने में पश्चात्पद नहीं है। वर्तमान समय में हिन्दू, जैन, वौद्ध-सभी धर्मवालों के पवित्र तीर्थ यहां विद्यमान हैं।

अति प्राचीन काल से राजगृह मगध देश की राजधानी थी। लाखों वर्ष पूर्व २० वें जैन तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ स्वामी के च्यवन, जन्म, दीक्षा व ज्ञान—चारों कल्याणक इसी राजगृह में हुए। यादव कुलतिलक श्रीकृष्ण वासुदेव के प्रतिस्पर्द्धी जरासंध प्रतिवासुदेव की राजधानी भी यही राजगृह नगरी थी। जैन शास्त्रोंमें इसका वर्णन वड़े गौरव के साथ किया गया है।

---

* जंवूद्दीवे भारहे वासे दस रायहाणीओ पन्नता तंजहा—चंपा महुरा वाणारसी य सावत्थी तहय साकेतं हत्थिणउर कंपिल्लं महिला कोसंबि रायगिहं। (ठाणांगसूत्र)

विहार प्रान्त के पटना और गया जिलों को प्राचीन मगध कहा जाता है। जैन शास्त्रों में वर्णित २५॥ आर्य देशों व १६ जनपदों में इसकी मुख्य रूप से गणना हुई है—एवं भारत की १० प्रमुख राजधानियों * में एक राजगृह भी है। मगध देशको भारत के प्रधान तीर्थों में वतलाया गया है। श्रमण संस्कृति के अत्यधिक प्रचार के कारण ही संभवतः इसे ब्राह्मण-ग्रन्थों में पापभूमि कहा गया पर उनके महाभारत, वायुपुराणादि धर्मग्रन्थ इस पवित्र भूमि को पतित पावन मानने में पश्चात्पद नहीं है। वर्तमान समय में हिन्दू, जैन, वौद्ध-सभी धर्मवालों के पवित्र तीर्थ यहाँ विद्यमान हैं।

अति प्राचीन काल से राजगृह मगध देश की राजधानी थी। लाखों वर्ष पूर्व २० वें जैन तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतनाथ स्वामी के च्यवन, जन्म, दीक्षा व ज्ञान—चारों कल्याणक इसी राजगृह में हुए। यादव कुलतिलक श्रीकृष्ण वासुदेव के प्रतिस्पर्द्धी जरासंध प्रतिवासुदेव की राजधानी भी यही राजगृह नगरी थी। जैन शास्त्रोंमें इसका वर्णन वड़े गौरव के साथ किया गया है।

---

* जंवूद्दीवे भारहे वासे दस रायहाणीओ पन्नता तंजहा—चंपा महुरा वाणारसी य सावत्थी तहय साकेतं हत्थिणउर कंपिल्लं महिला कोसंवि रायगिहं। (ठाणांगसूत्र)

की गवेषणा की और फले हुए चनोंके हरे भरे खेतों को देखकर चणकपुर बसाया। कालान्तर में उसको भी क्षीण समझ कर अजेय वृषभ—बैल देखकर ऋषभपुर और फिर किसी राजा ने कुश-दर्भ गुल्म देखकर कुशाग्रपुर बसाया। वहाँ बार-बार अग्निदाह होने से प्रसेनजित् राजा ने पुनः राजगृह नगर की स्थापना की।

महाराजा प्रसेनजित् का उत्तराधिकारी पुत्र महाराजा श्रेणिक (बिम्बसार) था। राजगृह के पुराने राजवंश 'बार्हद्रथ' (बृहद्रथ, जरासंध के पिता) का अन्त हो चुका था। इसके बाद न जाने किन-किन राजवंशोंका राज्य रहा पर अश्वघोष ने बुद्ध चरितमें महाराजा श्रेणिकको हर्यंक कुल का बतलाया है। महावंश के अनुसार बिम्बसार का राज्याभिषेक १५ वर्ष की अवस्था में हो गया था, उसने अंगदेशके राजाको मारकर उसे मगध राज्य में मिला लिया और कुछ वर्ष चंपानगर में पिता के प्रतिनिधि स्वरूप रहकर फिर राजगृह में चला आया।

महाराजा श्रेणिक मगध देश के राज सिंहासन पर बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने पिताके बसाये राजगृह को खूब समृद्धिशाली बनाया जिसके कारण कितने ही विद्वानों ने तो इसे नवीन राजगृह को बसानेवाला ही माना है। चीनी

की गवेषणा की और फले हुए चनोंके हरे भरे खेतों को देखकर चणकपुर बसाया। कालान्तर में उसको भी क्षीण समझ कर अजेय वृषभ—बैल देखकर ऋषभपुर और फिर किसी राजा ने कुश-दर्भ गुल्म देखकर कुशाग्रपुर बसाया। वहाँ बार-बार अग्निदाह होने से प्रसेनजित् राजा ने पुनः राजगृह नगर की स्थापना की।

महाराजा प्रसेनजित् का उत्तराधिकारी पुत्र महाराजा श्रेणिक (बिम्बसार) था। राजगृह के पुराने राजवंश 'बार्हद्रथ' (बृहद्रथ, जरासंध के पिता) का अन्त हो चुका था। इसके बाद न जाने किन-किन राजवंशोंका राज्य रहा पर अश्वघोष ने बुद्ध चरितमें महाराजा श्रेणिकको हर्यक कुल का बतलाया है। महावंश के अनुसार बिम्बसार का राज्याभिषेक १५ वर्ष की अवस्था में हो गया था, उसने अंगदेशके राजाको मारकर उसे मगध राज्य में मिला लिया और कुछ वर्ष चंपानगर में पिता के प्रतिनिधि स्वरूप रहकर फिर राजगृह में चला आया।

महाराजा श्रेणिक मगध देश के राज सिंहासन पर बड़ा प्रतापी राजा हुआ। उसने पिताके बसाये राजगृह को खूब समृद्धिशाली बनाया जिसके कारण कितने ही विद्वानों ने तो इसे नवीन राजगृह को बसानेवाला ही माना है। चीनी

सहा नगरी का विस्तृत वर्णन प्रभावशाली ढंग से पाया जाता है। भगवती-सूत्र वृत्तिमें निर्दिष्ट औपपातिक सूत्रगत नगर वर्णन्न तत्कालीन राजगृह के वैभव पर अच्छा प्रकाश डालता है। इन ग्रन्थों में किये गये नगर वर्णन को देखने से तत्कालीन ऋृद्धिसंपन्नता व नगर सौंदर्य का चित्रसा खिंच जाता है। जैन शास्त्रानुसार यहाँ गुणशिला, मंडिकुच्छ, मोग्गरपाणि प्रभृति यक्षों के अनेक चैत्य थे।

राजगृह से मगधकी राजधानी हट जानेसे क्रमशः उसका वैभव और विशाल रूप क्षीण होने लगा। सुप्रसिद्ध जैन सम्राट खारवेल ने अपने राज्यके ८ वें वर्ष में राजगृह पर चढ़ाई की थी। प्राचीन राजगृह तो ईसा के ४०० वर्ष बाद जब चीनी यात्री फाहियान आया तभी उजड़कर जन शून्य हो चुका था। नवीन राजगृह के पश्चिमी द्वारसे ३०० कदम पर अजातशत्रु के बनवाये सुंदर बौद्ध स्तूप की अवस्थिति और नगर के पूर्वोत्तर कोण में अम्बपाली के उद्यान में जीवक के द्वारा बनवाये हुए बौद्ध विहारों का भी फाहियान ने उल्लेख किया है।

प्राचीन राजगृह पांच पहाड़ों के दून में अवस्थित था। इसी कारण पुराणों में तथा महाभारत के सभापर्व में इसे 'गिरिव्रज' कहा है। चीनी यात्रियों के अतिरिक्त नवीन

महा नगरी का विस्तृत वर्णन प्रभावशाली ढंग से पाया जाता है। भगवती-सूत्र वृत्तिमें निर्दिष्ट औपपातिक सूत्रगत नगर वर्णन तत्कालीन राजगृह के वैभव पर अच्छा प्रकाश डालता है। इन ग्रन्थों में किये गये नगर वर्णन को देखने से तत्कालीन ऋद्धिसंपन्नता व नगर सौंदर्य का चित्रसा खिच जाता है। जैन शास्त्रानुसार यहाँ गुणशिला, मंडिकुच्छ, मोग्गरपाणि प्रभृति यक्षों के अनेक चैत्य थे।

राजगृह से मगधकी राजधानी हट जानेसे क्रमशः उसका वैभव और विशाल रूप क्षीण होने लगा। सुप्रसिद्ध जैन सम्राट खारवेल ने अपने राज्यके ८ वें वर्ष में राजगृह पर चढ़ाई की थी। प्राचीन राजगृह तो ईसा के ४०० वर्ष बाद जब चीनी यात्री फाहियान आया तभी उजड़कर जन शून्य हो चुका था। नवीन राजगृह के पश्चिमी द्वारसे ३०० कदम पर अजातशत्रु के बनवाये सुंदर बौद्ध स्तूप की अवस्थिति और नगर के पूर्वोत्तर कोण में अम्बपाली के उद्यान में जीवक के द्वारा बनवाये हुए बौद्ध विहारों का भी फाहियान ने उल्लेख किया है।

प्राचीन राजगृह पांच पहाड़ों के दून में अवस्थित था। इसी कारण पुराणों में तथा महाभारत के सभापर्व में इसे 'गिरिव्रज' कहा है। चीनी यात्रियों के अतिरिक्त नवीन

घने जंगल से परिपूर्ण है। प्राचीन दीवारें, कुछ जलाशय, कूप व कुछ ध्वंसावशेषों के अतिरिक्त विशेष महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं देखा जाता। प्राचीर के भग्नावशेष नगर की सीमा व स्थानादि के निर्णय करने में वड़े सहायक हैं। 'मणिहार मठ' नामक स्थान एक प्राचीन और विशाल इमारत है जिसे जैन साहित्य में सेठ शालिभद्र का निर्माल्य कूप वतलाया है। वहांसे प्राप्त शालिभद्र की चरण-पादुकाएँ सुना है कि अव भी पटना म्यूजियम में हैं। इस स्थानको १७ वीं शताब्दीके कवि विजयसागर ने हांसापुर नगर लिखा है। डा० वुकनन के समय में भी उस स्थान को आसपास के लोग हंसपुर नगर के नामसे पुकारते थे। उन लोगोंका मत था कि, यह हंसपुर पुराने राजगृह का चिह्न है पर वुकनन साहव खोजके वाद इस निर्णय पर पहुंचे कि, वहां की स्थिति ऐसी है तथा कोई चिह्न भी ऐसा नहीं मिलता कि वहां पर किसी प्राचीन नगर का अस्तित्व स्वीकार किया जाय। उदयगिरि से स्वर्णगिरि जानेके मार्ग में वांई तरफ एक पथरीले स्थान को जिसके चारों तरफ पक्की चहार दीवारी वनी हुई है, 'जरासंध की रणभूमि' कहते हैं। चट्टानों पर विचित्र अक्षरों के लेखसे खुदे हैं जिसे 'शंख शिलालेख' (Shell Inscription) कहते हैं।

घने जंगल से परिपूर्ण है। प्राचीन दीवारें, कुछ जलाशय, कूप व कुछ ध्वंसावशेषों के अतिरिक्त विशेष महत्वपूर्ण कुछ भी नहीं देखा जाता। प्राचीर के भग्नावशेष नगर की सीमा व स्थानादि के निर्णय करने में बड़े सहायक हैं। 'मणिहार मठ' नामक स्थान एक प्राचीन और विशाल इमारत है जिसे जैन साहित्य में सेठ शालिभद्र का निर्माल्य कूप बतलाया है। वहांसे प्राप्त शालिभद्र की चरण-पादुकाएँ सुना है कि अब भी पटना म्यूजियम में हैं। इस स्थानको १७ वीं शताब्दीके कवि विजयसागर ने हांसापुर नगर लिखा है। डा० बुकनन के समय में भी उस स्थान को आसपास के लोग हंसपुर नगर के नामसे पुकारते थे। उन लोगोंका मत था कि, यह हंसपुर पुराने राजगृह का चिह्न है पर बुकनन साहब खोजके बाद इस निर्णय पर पहुंचे कि, वहां की स्थिति ऐसी है तथा कोई चिह्न भी ऐसा नहीं मिलता कि वहां पर किसी प्राचीन नगर का अस्तित्व स्वीकार किया जाय। उदयगिरि से स्वर्णगिरि जानेके मार्ग में बांई तरफ एक पथरीले स्थान को जिसके चारों तरफ पक्की पहार दीवारी बनी हुई है, 'जरासंध की रणभूमि' कहते हैं। चट्टानों पर विचित्र अक्षरों के लेखसे खुदे हैं जिसे 'शंख शिलालेख' (Shell Inscription) कहते हैं।

के ध्यान करने की सैंकड़ों गुफायें हैं। फाहियान के समय में भी बुद्धदेव का धर्मोपदेश मंडप गिरकर ईंटों के खंडहर के रूप में परिवर्तित हो चुका था। बुद्धदेवने यहाँ सुरंगम सूत्रका उपदेश दिया था।

इस समय गृध्रकूट का मार्ग बहुत अच्छा है। वहाँ मन्दिर के अवशेष एवं एक गुफा में मस्तक विहीना सुंदर बौद्ध प्रतिमा विराजमान है जहाँ बर्मा के बौद्ध यात्री सोने के वर्क चढ़ाकर धूप दीपादि से पूजा करते हैं। ऊपरवाली गुफा में कुछ भी नहीं है।

फाहियान प्राचीन नगर से निकलकर करण्डवेणु वन विहार में गया, वहाँ उस समय भिक्षुओंका निवास था। वहाँ से पिप्पल गुहा - जहाँ भगवान बुद्ध भोजनके बाद बैठकर ध्यान करते थे फिर उससे पश्चिम शतपर्णी गुहामें गया वहाँ एक स्तूप था, इस गुहा में बुद्धदेव के महानिर्वाण के बाद ५०० अर्हन्तों ने पिटकोंका संग्रह किया था। सोनभंडार को कनिंगहम साहब ने सतपर्णी गुफा बताया, पर बेगलार आदि पश्चात्य विद्वान् इस बातसे सहमत नहीं हैं। सोनभंडार निसन्देह जैन गुफा है जहाँ प्राचीन शिलालेख एवं मूर्त्तियाँ आदि अद्यावधि विद्यमान हैं।

राजगृह में उपरोक्त गृध्रकूटके अतिरिक्त पाँच पहाड़ हैं

के ध्यान करने की सैंकड़ों गुफायें हैं। फाहियान के समय में भी बुद्धदेव का धर्मोपदेश मंडप गिरकर ईंटों के खंडहर के रूप में परिवर्तित हो चुका था। बुद्धदेवने यहाँ सुरंगम सूत्रका उपदेश दिया था।

इस समय गृध्रकूट का मार्ग बहुत अच्छा है। वहाँ मन्दिर के अवशेष एवं एक गुफा में मस्तक विहीना सुंदर बौद्ध प्रतिमा विराजमान है जहाँ वर्मा के बौद्ध यात्री सोने के वर्क चढ़ाकर धूप दीपादि से पूजा करते हैं। ऊपरवाली गुफा में कुछ भी नहीं है।

फाहियान प्राचीन नगर से निकलकर करण्डवेणु वन विहार में गया, वहाँ उस समय भिक्षुओंका निवास था। वहाँ से पिप्पल गुहा - जहाँ भगवान बुद्ध भोजनके बाद बैठकर ध्यान करते थे फिर उससे पश्चिम शतपर्णी गुहामें गया वहाँ एक स्तूप था, इस गुहा में बुद्धदेव के महानिर्वाण के बाद ५०० अर्हन्तों ने पिटकोंका संग्रह किया था। सोनभंडार को कनिंगहम साहब ने सतपर्णी गुफा बताया, पर बेगलार आदि पश्चात्य विद्वान् इस बातसे सहमत नहीं हैं। सोनभंडार निसन्देह जैन गुफा है जहाँ प्राचीन शिलालेख एवं मूर्त्तियाँ आदि अद्यावधि विद्यमान हैं।

राजगृह में उपरोक्त गृध्रकूटके अतिरिक्त पाँच पहाड़ हैं

सुर खेयर मण हरणे गुण नामे पंचसेल णयरम्मि।
विउलम्मि पव्वदवरे वीर जिणो अट्ठकत्तारो ॥६५॥

चउरस्सो पुव्वाए रिसि सेलो दाहिणाए वेभारो।
णइरिदि दिसा ए विउओ दोण्णि तिकोणट्ठि दायारा ॥६६॥

चाव सरिच्छो छिण्णो वरुणाणिल सोम दिस विभागेखु।
ईसाणाए पंडू वण्णासव्वे कुसग्ग परियरणा ॥६७॥

अर्थात्—देव और विद्याधरों के मन को मोहित करनेवाले और सार्थक नाम से प्रसिद्ध पंचशैल (पाँच पहाड़ों से सुशोभित) नगर अर्थात् राजगृही नगरी में, पर्वतों में श्रेष्ठ विपुलाचल पर श्री वीर जिनेन्द्र ने अर्थ फरमाया ॥६५॥ राजगृह नगर के पूर्व में चतुष्कोण ऋषिशैल, दक्षिण में वैभार और नैऋत्य दिशा में विपुलाचल पर्वत हैं। ये दोनों त्रिकोणाकृति युक्त हैं ॥६६॥ पश्चिम, वायव्य और उत्तर दिशा में फैला हुआ धनुषाकार छिन्न नामक पर्वत है और ईशान दिशा में पांडु नामक पर्वत है। ये सब पर्वत कुश समूह से वेष्टित हैं ॥६७॥

धवला टीका में और जयधवला में उद्धृत निम्न श्लोक इन पहाड़ों के नाम, दिशा व आकार के संबंध में प्रकाश डालते हैं—

सुर खेचर मण हरणे गुण णामे पंचसेल णयरम्मि।
विउलम्मि पव्वदवरे वीर जिणो अट्ठकत्तारो ॥६५॥

चउरस्सो पुव्वाए रिसि सेलो दाहिणाए वैभारो।
णइरिदि दिसा ए विउओ दोण्णि तिकोणट्ठि दायारा ॥६६॥

चाव सरिच्छो छिण्णो वरुणाणिल सोम दिस त्रिभागेसु।
ईसाणाए पंडू वण्गासव्वे कुसग्ग परियरणा ॥६७॥

अर्थात्—देव और विद्याधरों के मन को मोहित करनेवाले और सार्थक नाम से प्रसिद्ध पंचशैल (पाँच पहाड़ों से सुशोभित) नगर अर्थात् राजगृही नगरी में, पर्वतों में श्रेष्ठ विपुलाचल पर श्री वीर जिनेन्द्र ने अर्थ फरमाया ॥६५॥ राजगृह नगर के पूर्व में चतुष्कोण ऋषिशैल, दक्षिण में वैभार और नैऋत्य दिशा में विपुलाचल पर्वत हैं। ये दोनों त्रिकोणाकृति युक्त हैं ॥६६॥ पश्चिम, वायव्य और उत्तर दिशा में फैला हुआ धनुपाकार छिन्न नामक पर्वत है और ईशान दिशा में पांडु नामक पर्वत है। ये सब पर्वत कुश समुद्र से वेष्टित हैं ॥६७॥

धवला टीका में और जयधवला में उद्धृत निम्न श्लोक इन पहाड़ों के नाम, दिशा व आकार के संबंध में प्रकाश डालते हैं—

में राजगृह के ऋषिगिरि की कालशिला का वर्णन आया है जहाँ वहुत से निगंठ साधुओं ने तपश्चर्या की तीव्र वेदना सही थी। चतुर्थ पहाड़ स्वर्णगिरि ही ऋषिगिरि होना संभव है क्योंकि प्रभाचंद्र ने निर्वाणभक्ति की टीका में श्रमणगिरि लिखा है। 'ऋषि और श्रमण एकार्थ वाची हैं तथा श्रमण और सुवर्ण के अपभ्रंश की समानता के कारण स्वर्णगिरि प्रसिद्धि में आ गया हो'—पं० नाथूरामजी प्रेमी के ये विचार युक्तिसंगत मालूम होते हैं। दिगम्बर जैन समाज जिस सोनागिरि को श्रमणगिरि सिद्धक्षेत्र मानता है, वह दतिया राज्य का सोनागिरि न होकर राजगृहका चतुर्थ पहाड़ ही होना चाहिये।

श्री० कामताप्रसाद जैन ने 'जैन तीर्थ और उनकी यात्रा' में लिखा है कि, तीर्थरूप में राजगृह की प्रसिद्धि भगवान महावीर से पहले की है। सोपारा (थाना के निकट) से एक आर्यिका संघ यहाँ की वंदना करने ईसाकी आरम्भिक अथवा पूर्वीय शताब्दियों में आया था। धीवरी पूतिगंधा भी उस संघ में थी। वह क्षुल्लिका हो गई थी और यहीं नीलगुफा में उसने समाधि-मरण किया था।

राजगृह नगरसे भगवान महावीर का जन्म-जन्मान्तरों का संबंध था। १६ वें भवमें वे विशाखनंदी और अठारहवें

में राजगृह के ऋषिगिरि की कालशिला का वर्णन आया है जहाँ बहुत से निगंठ साधुओं ने तपश्चर्या की तीव्र वेदना सही थी। चतुर्थ पहाड़ स्वर्णगिरि ही ऋषिगिरि होना संभव है क्योंकि प्रभाचंद्र ने निर्वाणभक्ति की टीका में श्रमणगिरि लिखा है। 'ऋषि और श्रमण एकार्थ वाची हैं तथा श्रमण और सुवर्ण के अपभ्रंश की समानता के कारण स्वर्णगिरि प्रसिद्धि में आ गया हो'—पं० नाथूरामजी प्रेमी के ये विचार युक्तिसंगत मालूम होते हैं। दिगम्बर जैन समाज जिस सोनागिरि को श्रमणगिरि सिद्धक्षेत्र मानता है, वह दतिया राज्य का सोनागिरि न होकर राजगृहका चतुर्थ पहाड़ ही होना चाहिये।

श्री० कामताप्रसाद जैन ने 'जैन तीर्थ और उनकी यात्रा' में लिखा है कि, तीर्थरूप में राजगृह की प्रसिद्धि भगवान महावीर से पहले की है। सोपारा (थाना के निकट) से एक आर्यिका संघ यहाँ की वंदना करने ईसाकी आरम्भिक अथवा पूर्वीय शताब्दियों में आया था। धीवरी पूतिगंधा भी उस संघ में थी। वह क्षुल्लिका हो गई थी और यहीं नीलगुफा में उसने समाधि-मरण किया था।

राजगृह नगरसे भगवान महावीर का जन्म-जन्मान्तरों का संबंध था। १६ वें भवमें वे विशाखनंदी और अठारहवें

कर बड़ी भारी सेवा की थी। उनके अभिलेख आज भी सर्वत्र दिखलायी पड़ते हैं। विशेष जानकारी के लिये हमारी 'मणिधारी श्री जिनचंद्रसूरि' पुस्तक देखना चाहिये।

राजगृह विभिन्न धर्मवालों के लिये उद्‌बोधन का केन्द्र रहा है। जिन धर्मों का 'अहिंसा' के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है, उनका तो यह प्रधान दृष्टिविन्दु ही था। कहा जाता है कि, रूसके नोटविच नामक यात्री को तिब्बत के हीमिस नामक मठ में ईसाका एक प्राचीन हस्तलिखित जीवन-चरित्र मिला है। वह पाली भाषा में है और बड़ी बड़ी दो जिल्दों में समाप्त हुआ है।

इस जीवनी से पता लगता है कि, वह इसराइल में पैदा हुआ था और उसके मां-बाप गरीब थे। १३-१४ वर्ष की उम्र में वह अपने मां-बाप से रूठकर घर से भाग निकला और हिन्दुस्तान में आया। यहां वह राजगृह, काशी और जगन्नाथपुरी आदि स्थानों में घूमता रहा और आर्य विद्वानों से वेदाध्ययन करता रहा। इसके बाद उसने पाली भाषा सीखी और वह शुद्ध बौद्ध हो गया। स्वदेशको लौट कर उसने अपना नया ही धर्म चलाना चाहा, इसी बखेड़े में उसे शूली पर चढ़ा दिया गया। इससे पता चलता है कि, अन्यान्य मतों के समान ही ईसाई धर्म भारत की

कर वड़ी भारी सेवा की थी। उनके अभिलेख आज भी सर्वत्र दिखलायी पड़ते हैं। विशेष जानकारी के लिये हमारी 'मणिधारी श्री जिनचंद्रसूरि' पुस्तक देखना चाहिये।

राजगृह विभिन्न धर्मवालों के लिये उद्बोधन का केन्द्र रहा है। जिन धर्मों का 'अहिंसा' के साथ घनिष्ठ संबंध रहा है, उनका तो यह प्रधान दृष्टिबिन्दु ही था। कहा जाता है कि, रूसके नोटविच नामक यात्री को तिब्बत के हीमिस नामक मठ में ईसाका एक प्राचीन हस्तलिखित जीवन-चरित्र मिला है। वह पाली भाषा में है और वड़ी वड़ी दो जिल्दों में समाप्त हुआ है।

इस जीवनी से पता लगता है कि, वह इसराइल में पैदा हुआ था और उसके मां-वाप गरीब थे। १३-१४ वर्ष की उम्र में वह अपने मां-वाप से रूठकर घर से भाग निकला और हिन्दुस्तान में आया। यहाँ वह राजगृह, काशी और जगन्नाथपुरी आदि स्थानों में घूमता रहा और आर्य विद्वानों से वेदाध्ययन करता रहा। इसके वाद उसने पाली भाषा सीखी और वह शुद्ध बौद्ध हो गया। स्वदेशको लौट कर उसने अपना नया ही धर्म चलाना चाहा, इसी वखेड़े में उसे शूली पर चढ़ा दिया गया। इससे पता चलता है कि, अन्यान्य मतों के समान ही ईसाई धर्म भारत की

निस्सवइ, एसणं गोयमा ! महातवोवतीर प्पभवे पासवणे, एसणं गोयमा ! महातवोवतीर प्पभवस्स पासवणस्स अट्ठे पन्नते।"

अर्थात्—'राजगृह नगर के' बाहर वैभारगिरि के पास 'महातपोपतीर प्रभव' नामक प्रस्रवण है। उसकी लंबाई चौड़ाई पांचसौ हाथ है। उसका बाहर भाग अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित, सुन्दर, हर्षदायक, दर्शनीय, रमणीय और संतोषप्रद है। उस झरनेमें उष्णकाय वाले अनेक जीव और पुद्गल पानी के रूप में उत्पन्न होते हैं, नाश, चय और उपचय प्राप्त करते हैं। तदुपरान्त उस झरने से हमेशा गरम गरम पानी झरता रहता है। हे गौतम ! यह 'महातपो पतीरप्रभव' नामक झरना है और इस महातपोपतीरप्रभव नामक झरने का यह अर्थ है।'

विशेषावश्यक सूत्र में भी इस झरने को 'महातपोपतीर प्रभव' नामसे एवं बौद्ध ग्रन्थों में तपोद नाम से उल्लेख किया है। श्री जिनप्रभसूरिजी 'तप्तशीताम्बु कुण्डानि कुर्यु: कस्य न कौतुकम्" लिखकर अत्रस्थित अनेक कुण्डों की विद्यमानता स्वीकार करते हैं। पर भगवती और विशेषावश्यक केवल महातपोपतीर प्रभव झरने का अस्तित्व सूचित करते हैं। अतः संभव है कि, उसी झरने से भिन्न भिन्न कुण्डों का

निस्सवइ, एसणं गोयमा ! महातवोवतीर प्पभवे पासवणे, एसणं गोयमा ! महातवोवतीर प्पभवस्स पासवणस्स अट्ठे पन्नते।"

अर्थात्—'राजगृह नगर के' बाहर वैभारगिरि के पास 'महातपोपतीर प्रभव' नामक प्रस्रवण है। उसकी लंबाई चौड़ाई पांचसौ हाथ है। उसका बाहर भाग अनेक प्रकार के वृक्षों से सुशोभित, सुन्दर, हर्षदायक, दर्शनीय, रमणीय और संतोषप्रद है। उस झरनेमें उष्णकाय वाले अनेक जीव और पुद्गल पानी के रूप में उत्पन्न होते हैं, नाश, चय और उपचय प्राप्त करते हैं। तदुपरान्त उस झरने से हमेशा गरम गरम पानी झरता रहता है। हे गौतम ! यह 'महातपो पतीरप्रभव' नामक झरना है और इस महातपोपतीरप्रभव नामक झरने का यह अर्थ है।'

विशेपावश्यक सूत्र में भी इस झरने को 'महातपोपतीर प्रभव' नामसे एवं बौद्ध ग्रन्थों में तपोद नाम से उल्लेख किया है। श्री जिनप्रभसूरिजी 'तप्तशीताम्बु कुण्डानि कुर्युः कस्य न कौतुकम्" लिखकर अत्रस्थित अनेक कुण्डों की विद्यमानता स्वीकार करते हैं। पर भगवती और विशेपावश्यक केवल महातपोपतीर प्रभव झरने का अस्तित्व सूचित करते हैं। अतः संभव है कि, उसी झरने से भिन्न भिन्न कुण्डों का

होकर कोलाहल करते हुए भागने लगे। अंतमें राजा समुद्रसेन भी गढ़ छोड़कर चला गया। आम राजा के सैनिक नगर में प्रवेश करने लगे तो रुष्ट नगराधिष्ठायक व्यन्तर देव लोगों को मारने लगा। राजा आमने स्वयं साहस पूर्वक व्यन्तर को प्रसन्न करके उससे मित्रता कर ली।

व्यन्तर के निर्देशानुसार आम राजा की मृत्यु सं० ८६० मिती भाद्रपद शुक्ला ५ को मगध तीर्थ जाते हुए मगटोड़ा गांव में गंगातट पर हुई थी। उपर्युक्त घटना प्रभावक चरित्रगत बप्पभट्टिसूरि चरित्र में वर्णित है, इससे स्पष्ट है कि, नागावलोक ने नवीं शताब्दी में राजगृह को भग्न कर अधिकृत किया था। यह नवीन राजगृह का भग्न होना चाहिये, क्योंकि प्राचीन राजगृह तो पहले ही नष्ट हो चुका था।

श्री प्रभाचन्द्रसूरि कृत प्रभावक चरित्र तथा प्रबंध कोशान्तर्गत श्री जीवदेवसूरि चरित्र से जाना जाता है कि, वायड़ निवासी श्रेष्ठी धर्मदेव के पुत्र महीधर और महीपाल में से जेष्ठ पुत्र महीधर श्वेताम्बराचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी के पास दीक्षा लेकर राशिल्लसूरि नामक आचार्य हुए। महीपाल भ्रमण करते हुए दिगम्बराचार्य श्रुतकीर्ति के पास दीक्षित श्री स्वर्णकीर्ति नामक आचार्य हुए। जब ये राजगृह

होकर कोलाहल करते हुए भागने लगे। अंतमें राजा समुद्रसेन भी गढ़ छोड़कर चला गया। आम राजा के सैनिक नगर में प्रवेश करने लगे तो रुष्ट नगराधिष्ठायक व्यन्तर देव लोगों को मारने लगा। राजा आमने स्वयं साहस पूर्वक व्यन्तर को प्रसन्न करके उससे मित्रता कर ली।

व्यन्तर के निर्देशानुसार आम राजा की मृत्यु सं० ८६० मिती भाद्रपद शुक्ला ५ को मगध तीर्थ जाते हुए मगटोड़ा गाँव में गंगातट पर हुई थी। उपर्युक्त घटना प्रभावक चरित्रगत बप्पभट्टिसूरि चरित्र में वर्णित है, इससे स्पष्ट है कि, नागावलोक ने नवीं शताब्दी में राजगृह को भग्न कर अधिकृत किया था। यह नवीन राजगृह का भग्न होना चाहिये, क्योंकि प्राचीन राजगृह तो पहले ही नष्ट हो चुका था।

श्री प्रभाचन्द्रसूरि कृत प्रभावक चरित्र तथा प्रबंध कोशान्तर्गत श्री जीवदेवसूरि चरित्र से जाना जाता है कि, वायड़ निवासी श्रेष्ठी धर्मदेव के पुत्र महीधर और महीपाल में से जेष्ठ पुत्र महीधर श्वेताम्बराचार्य श्री जिनदत्तसूरिजी के पास दीक्षा लेकर राशिल्लसूरि नामक आचार्य हुए। महीपाल भ्रमण करते हुए दिगम्बराचार्य श्रुतकीर्ति के पास दीक्षित हो स्वर्णकीर्ति नामक आचार्य हुए। जब ये राजगृह

कारित राजगृहस्थ वैभारगिरि के चतुर्विंशति जिनालय के मूलनायक योग्य श्री महावीर स्वामी आदिके अनेक पाषाण व धातुमय बिम्ब, गुरुमूर्तियाँ और अधिष्ठायकों की प्रतिष्ठा की थी।

पुरातत्वप्रेमी स्वर्गीय श्री पूरणचंद्रजी नाहर के शान्तिभवन में संग्रहीत सं० १४१२ की काव्यमय ३३ पंक्तियों वाली विस्तृत प्रशस्ति में लिखा है कि, बिहार निवासी महत्तियाण ठ० मण्डन के वंशज वत्सराज और देवराज ने राजगृह के विपुलाचल पर श्री पार्श्वनाथ स्वामी का ध्वजदण्ड मण्डित विशाल जिनालय निर्माण करवा कर मिती आषाढ़ कृष्णा ६ को खरतरगच्छीय श्री जिन-लब्धिसूरि पट्ट प्रभाकर श्री जिनोदयसूरि की आज्ञासे उपाध्याय श्री भुवनहित गणि के पास प्रतिष्ठा करवायी थी। यह प्रशस्ति बड़ी महत्वपूर्ण है, तत्कालीन दिल्लीश्वर पीरोजशाह के मण्डलेश्वर मलिकवय नामक मगध शासक के सेवक सहणासदुरदीन (नसिरुद्दीन ?) महाशय ने इस पुण्यकार्य में बड़ा साहाय्य किया था।

सं० १४३१ में अयोध्यास्थित श्री लोकहिताचार्य के प्रति अणहिल्लपुर पत्तन से श्री जिनोदयसूरि प्रेषित 'विज्ञप्ति महालेख' से विदित होता है कि श्री लोकहिताचार्यजी

कारित राजगृहस्थ वैभारगिरि के चतुर्विंशति जिनालय के मूलनायक योग्य श्री महावीर स्वामी आदि के अनेक पाषाण व धातुमय बिम्ब, गुरुमूर्तियाँ और अधिष्ठायकों की प्रतिष्ठा की थी।

पुरातत्वप्रेमी स्वर्गीय श्री पूरणचंद्रजी नाहर के शान्तिभवन में संग्रहीत सं० १४१२ की काव्यमय ३३ पंक्तियों वाली विस्तृत प्रशस्ति में लिखा है कि, विहार निवासी महत्तियाण ठ० मण्डन के वंशज वत्सराज और देवराज ने राजगृह के विपुलाचल पर श्री पार्श्वनाथ स्वामी का ध्वजदण्ड मण्डित विशाल जिनालय निर्माण करवा कर मिती आषाढ़ कृष्णा ६ को खरतरगच्छीय श्री जिन-लब्धिसूरि पट्ट प्रभाकर श्री जिनोदयसूरि की आज्ञासे उपाध्याय श्री भुवनहित गणि के पास प्रतिष्ठा करवायी थी। यह प्रशस्ति वड़ी महत्वपूर्ण है, तत्कालीन दिल्लीश्वर पीरोजशाह के मण्डलेश्वर मलिकवय नामक मगध शासक के सेवक सहणासदुरदीन (नसिरुद्दीन ?) महाशय ने इस पुण्यकार्य में बड़ा साहाय्य किया था।

सं० १४३१ में अयोध्यास्थित श्री लोकाहिताचार्य के प्रति अणहिल्लपुर पत्तन से श्री जिनोदयसूरि प्रेषित 'विज्ञप्ति महालेख' से विदित होता है कि श्री लोकहिताचार्यजी

श्रावक छीतमल्ल के द्वारा निर्मापित वैभारगिरि शिखरस्थ धन्ना शालिभद्र मूर्ति, एकादश गणधर पादुका तथा स्वगुरु श्री जिनभद्रसूरि पादुका की प्रतिष्ठा की थी। सं० १५२५ फा० व० ५ को जौनपुर में लिखित आवश्यक सूत्र की पुष्पिका में, जो चींचड़ गोत्रीय ओसाल श्रावक मल्लराज ने उपाध्यायजी के उपदेशसे ज्ञानपंचमी उद्यापनार्थ लिखवाई थी, तीर्थ क्षत्रियकुण्ड व राजगृहादि की यात्रा का उल्लेख पाया जाता है। प्रस्तुत प्रति श्रीयुत् फूलचंदजी झावक फलौदी निवासी के संग्रह में वर्तमान है। उसी संवत् में आषाढ़ वदि ६ को लिखी हुई दशवैकालिक टीका की ११६ पत्रवाली प्रति की प्रशस्ति (जो उपर्युक्त प्रशस्ति से मिलती जुलती है) में भी उल्लेख है। यह प्रति जैसलमेर के बड़े उपाश्रय में उ० वृद्धिचंद्रजी के संग्रह में सुरक्षित है।

सुप्रसिद्ध तीर्थमालाओं में राजगृह का नाम खूब गौरव के साथ स्मरण किया गया है। नित्य प्रतिक्रमण में बोले जाने वाले "सकलतीर्थ-स्तोत्र में तथा श्रावक कवि ऋषभदास कृत चैत्यवन्दनमें "वैभारगिरि उपरे वीर जिनेसर राय" पद जैनों में खूब प्रसिद्ध है। सिद्धसेनसूरि ने सकलतीर्थ स्तोत्र में—"रायगिह चंप पावा अउज्झ कंपिल दूण पुरेसु" तथा संगमसूरि कृत तीर्थमाला में "वैभारगिरिरपापा जयंति

श्रावक छीतमल्ल के द्वारा निर्मापित वैभारगिरि शिखरस्थ धन्ना शालिभद्र मूर्ति, एकादश गणधर पादुका तथा स्वगुरू श्री जिनभद्रसूरि पादुका की प्रतिष्ठा की थी। सं० १५२५ फा० व० ५ को जौनपुर में लिखित आवश्यक सूत्र की पुष्पिका में, जो चींचड़ गोत्रीय ओसाल श्रावक मल्लराज ने उपाध्यायजी के उपदेशसे ज्ञानपंचमी उद्यापनार्थ लिखवाई थी, तीर्थ क्षत्रियकुण्ड व राजगृहादि की यात्रा का उल्लेख पाया जाता है। प्रस्तुत प्रति श्रीयुत् फूलचंदजी झाबक फलौदी निवासी के संग्रह में वर्तमान है। उसी संवत् में आषाढ़ वदि ९ को लिखी हुई दशवैकालिक टीका की ११६ पत्रवाली प्रति की प्रशस्ति (जो उपर्युक्त प्रशस्ति से मिलती जुलती है) में भी उल्लेख है। यह प्रति जैसलमेर के बड़े उपाश्रय में उ० वृद्धिचंद्रजी के संग्रह में सुरक्षित है।

सुप्रसिद्ध तीर्थमालाओं में राजगृह का नाम खूब गौरव के साथ स्मरण किया गया है। नित्य प्रतिक्रमण में बोले जाने वाले "सकलतीर्थ-स्तोत्र में तथा श्रावक कवि ऋषभदास कृत चैत्यवन्दनमें "वैभारागिरि उपरे वीर जिनेसर राय" पद जैनों में खूब प्रसिद्ध है। सिद्धसेनसूरि ने सकलतीर्थ स्तोत्र में—"रायगिह चंप पावा अउज्झ कंपिल हुण पुरेसु" तथा संगमसूरि कृत तीर्थमाला में "वैभारगिरिरपापा जयंति

ईया विरचउ ए विमल नीरेण मण उल्लासहि वर न्हवणु
ईया अहकरउं ए जगगुरु अंगि रंगि विलेपणु हउं तयणु
ईया पूजउ ए सुरहि कुसुमेहि वउलसिरि पमुहेहि तणु
ईया गाउं ए महुर सरेण देह रोमंचिय नम्ह गुण ॥१६॥
ईया नाचउ ए फरफर पाय काय विलासिहि जिण भुवणि
ईया उल्हवउं ए भव दुह दाह भावण भावउं नियय मणि
ईया इणि परि ए अवर भवणेसु विंव जुहारउ मनि रलिय
ईया पेखउ ए गणधर थुंभ दुख न पामउ जिम वलिय ॥१७॥
ईया मह मणि ए लागिय खंति जाएवउ हिव विपुलगिरे
ईया भागिय ए भव भय भंति पास जिणेसर पेखि करे
ईया अन्नवि ए जिणवर तुंग चंग निहालउ तहि नमउ ए
जिणवर ए विंव सुरंग सिद्धि रमणि सउं जिम रमउ ए॥१८॥
ईया निरखइ ए नयणिरि कुंड मणि अच्छेरउ ऊपजइ ए
जहि वहए नीर पयंड अग्गि विणु ऊन्हउ नीपजइ ए ॥
गढ़ मढ़ ए मंदिर सार वाड़िय वन रलियामणा ए
नीपना ए जत्थ अपार समवसरण जिनवर तणा ए ॥१६॥
ईय धन्ना ए सालिहभद्द जहि ठाणहि काउसग्गि रह्या ए
भेटइ ए जे तहि वीर ते नहु भव परिभव सहइ ए।
रस तणं ए कूप रसाल हथिशाला सेणिय तणिय
पेखविए वीर पोसाल पूरिय मन इच्छा घणिय ॥२०॥

ईया विरचउ ए विमल नीरेण मण उल्लासहि वर न्हवणु
ईया अहकरउं ए जगगुरु अंगि रंगि विलेपणु हउं तयणु
ईया पूजउ ए सुरहि कुसुमेहि वउलसिरि पमुहेहि तणु
ईया गाउं ए महुर सरेण देह रोमंचिय नम्ह गुण ।।१६।।
ईया नाचउ ए फरफर पाय काय विलासिहि जिण भुवणि
ईया उल्हवउं ए भव दुह दाह भावण भावउं नियय मणि
ईया इणि परि ए अवर भवणेसु विंव जुहारउ मनि रलिय
ईया पेखउ ए गणधर थुंभ दुख न पामउ जिम वलिय ।।१७।।
ईया मह मणि ए लागिय खंति जाएवउ हिव विपुलगिरे
ईया भागिय ए भव भय भंति पास जिणेसर पेखि करे
ईया अन्नवि ए जिणवर तुंग चंग निहालउ तहि नमउ ए
जिणवर ए विंव सुरंग सिद्धि रमणि सउं जिम रमउ ए ।।१८।।
ईया निरखइ ए नयणिरि कुंड मणि अच्छेरउ ऊपजइ ए
जहि वहए नीर पयंड अग्गि विणु ऊन्हउ नीपजइ ए ।।
गढ़ मढ़ ए मंदिर सार वाड़िय वन रलियामणा ए
नीपन्ना ए जत्थ अपार समवसरण जिनवर तणा ए ।।१९।।
ईय धन्ना ए सालिहभद्द जहि ठाणहि काउसग्गि रह्या ए
भेटइ ए जे तहि वीर ते नहु भव परिभव सहइ ए ।
रस तणं ए कूप रसाल हथिशाला सेणिय तणिय
पेखविए वीर पोसाल पूरिय मन इच्छा घणिय ।।२०।।

है कि उपर्युक्त संघ सम्मेतशिखर जी से १२ योजन चल कर ७ वें दिन राजगृह पहुंचा। यहाँ श्रेणिक नरेश का गढ़ और गरमपानी के कुण्ड देखे। पाँचों पहाड़ोंमें १ वैभार २ विपुल ३ उदय ४ रत्न ५ स्वर्णगिरि क्रम लिखा है। प्रथम वैभारगिरि पर मुनिसुव्रत प्रभु का ५२ जिनालय, पद्मप्रभु, नेमिनाथ चन्द्रप्रभ, पार्श्व, आदिनाथ अजितनाथ, अभिनन्दन, महावीर, विमलनाथ, सुमतिनाथ और सुपार्श्वनाथ तथा दूसरे मन्दिर में मुनिसुव्रत स्वामी की वन्दना की। वीर विहार से दक्षिण ११ गणधर पादुकाओं की पूजा की। भूमिग्रहों में कई जिनेश्वर काउसग्गिए तथा पद्मासन ध्यानस्थ जिनविम्बों के दर्शन किये। ईश्वर देहरा (शिवालय) के सामने धन्ना शालिभद्र काउसग्गियों के दर्शन कर के गिरिराज से उतरे, मिश्री के पानी से सर्व संघ को संतुष्ट किया। हर्षित चित से गुनशिल चैत्य और शालिभद्र (निर्माल्य) कूप व रोहिणियाकी गुफा देखी। विपुलगिरि पर एक जिनालय में २४ प्रतिमाएँ, तथा चार प्रासादोंमें अजितनाथ, पार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ और पद्मप्रभु स्वामी की पूजा की। जम्बूस्वामी, मेघकुमार, धन्ना, स्कंधक मुनि आदि के पादुकाओं के दर्शन कर उदयगिरि पर चौमुख जिनालय रत्नगिरि पर ऋषभजिन प्रासाद के दर्शन किये। दूसरे दिन सोवनगिरि

है कि उपर्युक्त संघ सम्मेतशिखर जी से १२ योजन चल कर ७ वें दिन राजगृह पहुंचा। यहाँ श्रेणिक नरेश का गढ़ और गरमपानी के कुण्ड देखे। पाँचों पहाड़ोंमें १ वैभार २ विपुल ३ उदय ४ रत्न ५ स्वर्णगिरि क्रम लिखा है। प्रथम वैभारगिरि पर मुनिसुव्रत प्रभु का ५२ जिनालय, पद्मप्रभु, नेमिनाथ चन्द्रप्रभ, पार्श्व, आदिनाथ अजितनाथ, अभिनन्दन, महावीर, विमलनाथ, सुमतिनाथ और सुपार्श्वनाथ तथा दूसरे मन्दिर में मुनिसुव्रत स्वामी की वन्दना की। वीर विहार से दक्षिण ११ गणधर पादुकाओं की पूजा की। भूमिग्रहों में कई जिनेश्वर काउसग्गिए तथा पद्मासन ध्यानस्थ जिनबिम्बों के दर्शन किये। ईश्वर देहरा (शिवालय) के सामने धन्ना शालिभद्र काउसग्गियों के दर्शन कर के गिरिराज से उतरे, मिश्री के पानी से सर्व संघ को संतुष्ट किया। हर्षित चित से गुनशिल चैत्य और शालिभद्र (निर्माल्य) कूप व रोहिणियाकी गुफा देखी। विपुलगिरि पर एक जिनालय में २४ प्रतिमाएँ, तथा चार प्रासादोंमें अजितनाथ, पार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ और पद्मप्रभु स्वामी की पूजा की। जम्बूस्वामी, मेघकुमार, धन्ना, स्कंधक मुनि आदि के पादुकाओं के दर्शन कर उदयगिरि पर चौमुख जिनालय रत्नगिरि पर ऋषभजिन प्रासाद के दर्शन किये। दूसरे दिन सोवनगिरि

विद्यमानता थी। वीर पोशाल एक ही पत्थर में बनी हुई ४६ हाथ लम्बी है तथा १४ कुण्ड गरम जल के हैं।

शीलविजय जी ने सं० १७४६ में तीर्थमाला निर्मित की। उस में ५ पहाड़ और तदुपरि जिनालय, शालिभद्र के घर के पास निर्माल्य कूप, नन्द मणियार की वापी, वैभारगिरि पर रोहणिया की गुफा तथा गढ़ में श्रेणिक राजाके आवास का उल्लेख किया है।

तपागच्छीय कवि सौभाग्यविजय ने सं० १७५० में जो तीर्थमाला बनाई उस में वैभारगिरि पर ५२, विपुलगिरि पर ८, रत्नगिरि पर ३, स्वर्णगिरि पर १६, उदयगिरि पर १ चौमुख, गाँव-मन्दिर १ इस प्रकार इस तीर्थके ८१ जिनालयों की संख्या लिखी है। वैभारगिरि पर ११ गणधर धन्ना शालिभद्र इत्यादि का वर्णन करते हुए शालिभद्र के आवास स्थानमें निर्माल्य कूप, जिसपर गोमट किया हुआ है—स्नान करने से विकार को नष्ट करने वाले सूर्यकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड आदि गरम पानी के कुण्डों तथा वैभारगिरि की दक्षिण तलहट्टिका में स्वर्णभंडार—जिसे लोग वीर प्रभु की पोषध-शाला कहते हैं—का उल्लेख किया है, वे यह भी लिखते हैं कि त्रिखण्डाधिपति जरासन्ध राजा का कोट आज भी अच्छी स्थिति में विद्यमान है।

विद्यमानता थी। वीर पोशाल एक ही पत्थर में बनी हुई ४६ हाथ लम्बी है तथा १४ कुण्ड गरम जल के हैं।

शीलविजय जी ने सं० १७४६ में तीर्थमाला निर्मित की। उस में ५ पहाड़ और तदुपरि जिनालय, शालिभद्र के घर के पास निर्माल्य कूप, नन्द मणियार की वापी, वैभारगिरि पर रोहणिया की गुफा तथा गढ़ में श्रेणिक राजाके आवास का उल्लेख किया है।

तपागच्छीय कवि सौभाग्यविजय ने सं० १७५० में जो तीर्थमाला बनाई उस में वैभारगिरि पर ५२, विपुलगिरि पर ८, रत्नगिरि पर ३, स्वर्णगिरि पर १६, उदयगिरि पर १ चौमुख, गांव-मन्दिर १ इस प्रकार इस तीर्थके ८१ जिनालयों की संख्या लिखी है। वैभारगिरि पर ११ गणधर धन्ना शालिभद्र इत्यादि का वर्णन करते हुए शालिभद्र के आवास स्थानमें निर्माल्य कूप, जिसपर गोमट किया हुआ है—स्नान करने से विकार को नष्ट करने वाले सूर्यकुण्ड, ब्रह्मकुण्ड आदि गरम पानी के कुण्डों तथा वैभारगिरि की दक्षिण तलहट्टिका में स्वर्णभंडार—जिसे लोग वीर प्रभु की पौषध-शाला कहते हैं—का उल्लेख किया है, वे यह भी लिखते हैं कि त्रिखण्डाधिपति जरासन्ध राजा का कोट आज भी अच्छी स्थिति में विद्यमान है।

और तत्पश्चात् राजा बच्छराज नाहटा के आग्रह से लखनऊ में ३ चातुर्मास किये।

दानवीर द्वितीय जगड़ूसाह के पिता लालन गोत्रीय ओसवाल वर्द्धमानशाह व उनके भ्राता पद्मसिंह धर्मिष्ठ व्यक्ति हुए हैं। अञ्चलगच्छीय अमरसागरसूरि ने सं० १६९१ में 'वर्द्धमान पद्मसिंह श्रेष्ठी चरित्रम्' निर्माण किया जिसके ८ वें सर्ग में लिखा है कि वे भ्राता सम्मेतशिखर तीर्थाधिराज की यात्रार्थ गये वहाँ के मार्ग को दुर्गम देखकर ढाई लाख मुद्राओंके व्ययसे समेतशिखर पर पैड़ियाँ बंधवाईं उसके बाद वैभारगिरि, चंपा, काकंदी, पावा, राजगृह बनारस, हस्तिनापुर आदि तीर्थों की यात्रा करने में प्रचुर द्रव्य व्यय किया।

और तत्पश्चात् राजा बच्छराज नाहटा के आग्रह से लखनऊ में ३ चातुर्मास किये।

दानवीर द्वितीय जगडूसाह के पिता लालन गोत्रीय ओसवाल वर्द्धमानशाह व उनके भ्राता पद्मसिंह धर्मिष्ठ व्यक्ति हुए हैं। अञ्चलगच्छीय अमरसागरसूरि ने सं० १६६१ में 'वर्द्धमान पद्मसिंह श्रेष्ठी चरित्रम्' निर्माण किया जिसके ८ वें सर्ग में लिखा है कि वे भ्राता सम्मेतशिखर तीर्थाधिराज की यात्रार्थ गये वहाँ के मार्ग को दुर्गम देखकर ढाई लाख मुद्राओंके व्ययसे समेतशिखर पर पैड़ियाँ बंधवाईं उसके बाद वैभारगिरि, चंपा, काकंदी, पावा, राजगृह बनारस, हस्तिनापुर आदि तीर्थों की यात्रा करने में प्रचुर द्रव्य व्यय किया।

कुण्ड, सप्तर्षि धारा और काशीधारा नामक सात कुण्डों में ब्रह्मकुण्ड प्रधान है। गंगा-यमुना कुण्ड में दो धाराओं द्वारा पानी आता है, सभी कुण्ड गरम पानी के है। उत्तर में सप्तर्षि धारा और दक्षिण में एक वापी है। दीवाल में अत्रि, भरद्वाज, काश्यप, गौतम, विश्वामित्र, वशिष्ठ और जमदग्नि ऋषियों के नाम से जल के निर्झर हैं जो सात तीर्थ कहलाते हैं। वापी के ऊपरवर्त्ती मन्दिर में सप्तर्षियों की मूर्त्तियां स्थापित हैं। ब्रह्मकुण्ड के पास शिवालय है। सप्तर्षि धारा के उत्तर में लक्ष्मीनारायण, शिवपरिवार, वलराम, हनुमान प्रभृति के ५ मंदिर हैं। सप्तर्षिधारा के पास ब्रह्मकुण्ड है जिस का पानी सबसे अधिक उष्ण है, कुण्ड में ब्रह्मा, लक्ष्मी और गणपति की मूर्तियां है। पूर्व दिशस्थित लघु मन्दिर में वाराह की मूर्ति है। पहाड़ के पास संध्या देवी का मन्दिर केदार कुण्ड और तत्पार्श्ववर्त्ती मन्दिर में विष्णु (कृष्ण) की पादुकाएँ विराजमान है।

विपुलाचल की तलहट्टी में सीता कुण्ड है जिसके उत्तर हाटकेश्वर का मन्दिर है। उत्तर की ओर सूर्यकुण्ड, चन्द्रकुण्ड, गणेशकुण्ड, और रामकुण्ड है। राम कुण्ड की धारा एक गरम और दूसरी ठण्डी है अवशेष सभी गरम पानी के कुण्ड हैं। जिस ऋष्य-शृंग तीर्थ

कुण्ड, सप्तर्षि धारा और काशीधारा नामक सात कुण्डों में ब्रह्मकुण्ड प्रधान है। गंगा-यमुना कुण्ड में दो धाराओं द्वारा पानी आता है, सभी कुण्ड गरम पानी के है। उत्तर में सप्तर्षि धारा और दक्षिण में एक वापी है। दीवाल में अत्रि, भरद्वाज, काश्यप, गौतम, विश्वामित्र, वशिष्ठ और जमदग्नि ऋृषियों के नाम से जल के निर्झर हैं जो सात तीर्थ कहलाते हैं। वापी के ऊपरवर्त्ती मन्दिर में सप्तर्षियों की मूर्त्तियां स्थापित हैं। ब्रह्मकुण्ड के पास शिवालय है। सप्तर्षि धारा के उत्तर में लक्ष्मीनारायण, शिवपरिवार, बलराम, हनुमान प्रभृति के ५ मंदिर हैं। सप्तर्षिधारा के पास ब्रह्मकुण्ड है जिस का पानी सबसे अधिक उष्ण है, कुण्ड में ब्रह्मा, लक्ष्मी और गणपति की मूर्तियां है। पूर्व दिशस्थित लघु मन्दिर में वाराह की मूर्ति है। पहाड़ के पास संध्या देवी का मन्दिर केदार कुण्ड और तत्पार्श्ववर्त्ती मन्दिर में विष्णु (कृष्ण) की पादुकाएँ विराजमान है।

विपुलाचल की तलहट्टी में सीता कुण्ड है जिसके उत्तर हाटकेश्वर का मन्दिर है। उत्तर की ओर सूर्यकुण्ड, चन्द्रकुण्ड, गणेशकुण्ड, और रामकुण्ड है। राम कुण्ड की धारा एक गरम और दूसरी ठण्डी है अवशेष सभी गरम पानी के कुण्ड हैं। जिस ऋष्य-शृंग तीर्थ

भारत में लिखा है कि राजगृह तीर्थ स्पर्श करने से ब्रह्महत्या छूटती है व मोक्ष मिलता है।

महाभारत के सभापर्व अध्याय २१ श्लोक ९ में "मणिनाग" स्थान का उल्लेख है, यह स्थान मणियार मठ अनुमान किया जाता है। मणिनाग से गौतम वन जाकर अहिल्या कुण्ड में स्नान का फल लिखा है, मणिनाग से पूर्व दक्षिण में तपोवन पश्चिम में कौशिक आश्रम है। तपोवन राजगृह से १०-१२ मील पश्चिम में है यहां प्राचीन मूर्त्तियों के अवशेषादि पुरातत्व की सामग्री अब भी विद्यमान है।

बाणगंगा से पूर्व एक कोश पर कण्व तीर्थ है महात्म्य में यहां अग्नि-तीर्थ का उल्लेख है जहां पर त्रिकोटीश्वर महादेव हैं। अग्नि तीर्थ के पश्चिम वृष्यगंगा और १०० धनुप पर शालग्राम तीर्थ है। इनके अतिरिक्त राजगृह में माया देवी का और नगर के उत्तर दिग्वर्ती कोना देवी का स्थान है। यहां पर हंस तीर्थ का उल्लेख है तथा चण्डकौशिक कुण्ड व विष्णु कुण्ड के मध्य में देवदत्त ऋषि का स्थान है राजगृह के उत्तर में अश्विनीकुमार का स्थान है। इस प्रकार पुराने हिन्दू शास्त्रों में बहुत से पवित्र स्थान उल्लिखित हैं वर्त्तमान में ब्रह्मकुण्ड, सूर्यकुण्डादि पर जो महादेवादि के देवालय विद्यमान हैं वे १५०-२०० वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं

भारत में लिखा है कि राजगृह तीर्थ स्पर्श करने से ब्रह्महत्या छूटती है व मोक्ष मिलता है।

महाभारत के सभापर्व अध्याय २१ श्लोक ६ में "मणिनाग" स्थान का उल्लेख है, यह स्थान मणियार मठ अनुमान किया जाता है। मणिनाग से गौतम वन जाकर अहिल्या कुण्ड में स्नान का फल लिखा है, मणिनाग से पूर्व दक्षिण में तपोवन पश्चिम में कौशिक आश्रम है। तपोवन राजगृह से १०-१२ मील पश्चिम में है यहां प्राचीन मूर्त्तियों के अवशेषादि पुरातत्व की सामग्री अब भी विद्यमान है।

बाणगंगा से पूर्व एक कोश पर कण्व तीर्थ है महात्म्य में यहां अग्नि-तीर्थ का उल्लेख है जहां पर त्रिकोटीश्वर महादेव हैं। अग्नि तीर्थ के पश्चिम वृष्णगंगा और १०० धनुष पर शालग्राम तीर्थ है। इनके अतिरिक्त राजगृह में माया देवी का और नगर के उत्तर दिग्वर्ती कोना देवी का स्थान है। यहां पर हंस तीर्थ का उल्लेख है तथा चण्डकौशिक कुण्ड व विष्णु कुण्ड के मध्य में देवदत्त ऋषि का स्थान है राजगृह के उत्तर में अश्विनीकुमार का स्थान है। इस प्रकार पुराने हिन्दू शास्त्रों में बहुत से पवित्र स्थान उल्लिखित है वर्त्तमान में ब्रह्मकुण्ड, सूर्यकुण्डादि पर जो महादेवादि के देवालय विद्यमान हैं वे १५०-२०० वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं

सं० ४ में "राजगृह के दो हिन्दी के लेख" शीर्षक से दो लेख प्रकाशित किये हैं जिन में सप्तधारा कुण्ड का महाराजा ताजअलीखां बहादुर के समय का व दूसरा सूर्यकुंड के पश्चिमी दीवार का वकसंडा के बाबू सीताराम का सं० १९०४ का है दोनों अभिलेख हिन्दी कविता में है इन्हीं सीताराम बाबू ने वेनीमाधव मन्दिर के नीचे सरस्वती का पक्का घाट बंधाया जिसका लेख सं० १९२५ का नाहर जी की प्रबन्धावली में छपा है।

अत्रस्थित धर्मशालाओं में सर्व प्राचीन जैन श्वेताम्बर धर्मशाला है अभी दिगम्बरों ने भी अपने २ मन्दिर व नव्य धर्मशालादि बनवा लिये हैं। बरमी लोगों ने भी अपना एक मन्दिर और यात्रियों के ठहरने के हेतु मकान बनाया है। जिस में उनके एक फुंगी बराबर यहाँ रहते हैं। इसी मन्दिर के पीछे बगीचे में राजगृही में प्राप्त कतिपय मूर्तियां संग्रहित की हुई हैं जिन में करण्डवेणु वनोद्यान से प्राप्त खड़ी हुई विशाल बौद्ध प्रतिमा भी है जिस पर बौद्धों का "ये धम्मा हेतु पभवा" श्लोक खुदा हुआ है। यह प्रतिमा हाल ही में सरकार ने बौद्ध मन्दिर को दी है। विपुलगिरि के निकट जापानी मन्दिर भी नूतन निर्मित हुआ है। सनातन धर्मशाला कलकत्ते की श्रीमती आनन्दी बाई ने बनवायी थी

सं० ४ में "राजगृह के दो हिन्दी के लेख" शीर्षक से दो लेख प्रकाशित किये हैं जिन में सप्तधारा कुण्ड का महाराजा ताजअलीखां बहादुर के समय का व दूसरा सूर्यकुंड के पश्चिमी दीवार का वकसंडा के बाबू सीताराम का सं० १९०४ का है दोनों अभिलेख हिन्दी कविता में है इन्हीं सीताराम बाबू ने वेनीमाधव मन्दिर के नीचे सरस्वती का पक्का घाट बंधाया जिसका लेख सं० १९२५ का नाहर जी की प्रबन्धावली में छपा है।

अत्रस्थित धर्मशालाओं में सर्व प्राचीन जैन श्वेताम्बर धर्मशाला है अभी दिगम्बरों ने भी अपने २ मन्दिर व नव्य धर्मशालादि बनवा लिये हैं। बरमी लोगों ने भी अपना एक मन्दिर और यात्रियों के ठहरने के हेतु मकान बनाया है। जिस में उनके एक फुंगी बराबर यहां रहते हैं। इसी मन्दिर के पीछे बगीचे में राजगृही में प्राप्त कतिपय मूर्तियां संग्रहित की हुई हैं जिन में करण्डवेणु वनोद्यान से प्राप्त खड़ी हुई विशाल बौद्ध प्रतिमा भी है जिस पर बौद्धों का "ये धम्मा हेतु पभवा" श्लोक खुदा हुआ है। यह प्रतिमा हाल ही में सरकार ने बौद्ध मन्दिर को दी है। विपुलगिरि के निकट जापानी मन्दिर भी नूतन निर्मित हुआ है। सनातन धर्मशाला कलकत्ते की श्रीमती आनन्दी बाई ने बनवायी थी

हैं कुछ मन्दिर जीर्ण होकर नष्ट हो गए बाकी सं० १८५७ के इतिहास प्रसिद्ध सिपाही विद्रोह के समय बागी लोगों ने पांचों पहाड़ों को सुरक्षित समझ कर अपना अड्डा जमा लिया था। उन लोगों ने पहाड़ के मन्दिरों की मूर्त्तियों व चरणों को इतस्ततः कर दिये इसी कारण आज भी यत्र तत्र मूर्त्तिखण्डादि अवशेष प्राप्त हो जाते हैं।

राजगृह तीर्थ की व्यवस्था प्राचीन काल से विहार निवासी महत्तियाण संघ व ओसवालों के हाथ में थी। सं० १९६३ से पूर्व विहार निवासी मुन्नीलालजी सुचन्ती के हाथ में इस तीर्थ की असन्तोषजनक व्यवस्था थी। संघ की असावधानी से यहां के पण्डों ने समस्त मन्दिरों, धर्मशाला और भंडार की जमीन पर कब्जा जमा लिया था। कलकत्ता के सुप्रसिद्ध जौहरी राय बद्रीदास बहादुर के सुपुत्र स्वर्गीय रायकुमारसिंहजी मुकीम ने सं० १९६२ में इस तीर्थ का प्रबन्ध भार ग्रहण कर समस्त स्थानों पर अपना कब्जा करके तीर्थ की अच्छी उन्नति की। अभी उनके सुपुत्र बाबू फतेकुमारसिंहजी इस तीर्थ के सम्मान्य मैनेजर हैं। पुरातत्त्व प्रेमी श्रीयुत मणिलालजी श्रीश्रीमालके लघु भ्राता श्रीयुत् कन्हैयालालजी श्रीश्रीमाल तीर्थ की अच्छी सेवा कर रहे हैं। इनके पहले धनपतसिंहजी मालकस मुनीम थे।

हैं कुछ मन्दिर जीर्ण होकर नष्ट हो गए बाकी सं० १८५७ के इतिहास प्रसिद्ध सिपाही विद्रोह के समय बागी लोगों ने पांचों पहाड़ों को सुरक्षित समझ कर अपना अड्डा जमा लिया था। उन लोगों ने पहाड़ के मन्दिरों की मूर्त्तियों व चरणों को इतस्तत: कर दिये इसी कारण आज भी यत्र तत्र मूर्त्तिखण्डादि अवशेष प्राप्त हो जाते हैं।

राजगृह तीर्थ की व्यवस्था प्राचीन काल से विहार निवासी महत्तियाण संघ व ओसवालों के हाथ में थी। सं० १९६३ से पूर्व विहार निवासी मुन्नीलालजी सुचन्ती के हाथ में इस तीर्थ की असन्तोषजनक व्यवस्था थी। संघ की असावधानी से यहां के पण्डों ने समस्त मन्दिरों, धर्मशाला और भंडार की जमीन पर कब्जा जमा लिया था। कलकत्ता के सुप्रसिद्ध जौहरी राय बद्रीदास बहादुर के सुपुत्र स्वर्गीय रायकुमारसिंहजी मुकीम ने सं० १९६२ में इस तीर्थ का प्रबन्ध भार ग्रहण कर समस्त स्थानों पर अपना कब्जा करके तीर्थ की अच्छी उन्नति की। अभी उनके सुपुत्र बाबू फतेकुमारसिंहजी इस तीर्थ के सम्मान्य मैनेजर हैं। पुरातत्त्व प्रेमी श्रीयुत मणिलालजी श्रीश्रीमालके लघु भ्राता श्रीयुत् कन्हैयालालजी श्रीश्रीमाल तीर्थ की अच्छी सेवा कर रहे हैं। इनके पहले धनपतसिंहजी मालकस मुनीम थे।

नंद मणियार का वृतान्त आया है, यहां उसका परिचय देना अप्रासंगिक न होगा—राजगृह में नंद मणियार (मणिकार-जौहरी) नामक श्रेष्ठी रहता था वह वीर प्रभु के उपदेश से श्रावक हुआ। उसने महाराजा श्रेणिक-विम्बिसार की आज्ञा से नगर के बाहर आरोग्यशालादि शोभित वनखण्ड चतुष्क परिवृत नन्दा पुष्करिणी निर्माण करवायी। उसी में आरक्त अध्यवसायों द्वारा मर कर वहां मैंढक हुआ। भगवान के राजगृह पधारने पर वह मैंढक प्रभु दर्शनार्थ जा रहा था, मार्ग में महाराजा श्रेणिक की सवारी मिली जो प्रभु वन्दनार्थ जा रही थी। राजा के घोड़े के पैरों तले कुचल कर मैंढक की मृत्यु हो गयी। और प्रभु के ध्यान से सौधर्म देवलोक स्थित दुर्दुरावतंशक विमान में देव हुआ। वहां से च्यव कर नंद मणियार का जीव महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष जावेगा।

पूर्व कवियों के किये हुए विवेचन में हम देख चुके हैं कि पूर्वकाल में यात्रा का मार्ग—पहाड़ों का यात्रा क्रम आजकल की भांति नहीं था जिसे जिस क्रम में सुविधा मालूम हुई उसी क्रम से यात्रा कर ली आज भी संलग्न क्रम या पृथक् पृथक् यात्रा करने के भिन्न भिन्न मार्ग हैं। पुराने सभी वर्णन वैभारगिरि को प्रथम पहाड़ मानते हैं पर

नंद मणियार का वृतान्त आया है, यहां उसका परिचय देना अप्रासंगिक न होगा—राजगृह में नंद मणियार (मणिकार-जौहरी) नामक श्रेष्ठी रहता था वह वीर प्रभु के उपदेश से श्रावक हुआ। उसने महाराजा श्रेणिक-बिम्बिसार की आज्ञा से नगर के बाहर आरोग्यशालादि शोभित वनखण्ड चतुष्क परिवृत नन्दा पुष्करिणी निर्माण करवायी। उसी में आरक्त अध्यवसायों द्वारा मर कर वहां मैंढक हुआ। भगवान के राजगृह पधारने पर वह मैंढक प्रभु दर्शनार्थ जा रहा था, मार्ग में महाराजा श्रेणिक की सवारी मिली जो प्रभु वन्दनार्थ जा रही थी। राजा के घोड़े के पैरों तले कुचल कर मैंढक की मृत्यु हो गयी। और प्रभु के ध्यान से सौधर्म देवलोक स्थित दुर्दुरावतंशक विमान में देव हुआ। वहां से च्यव कर नंद मणियार का जीव महाविदेह क्षेत्र से मोक्ष जावेगा।

पूर्व कवियों के किये हुए विवेचन में हम देख चुके हैं कि पूर्वकाल में यात्रा का मार्ग—पहाड़ों का यात्रा क्रम आजकल की भांति नहीं था जिसे जिस क्रम में सुविधा मालूम हुई उसी क्रम से यात्रा कर ली आज भी संलग्न क्रम या पृथक् पृथक् यात्रा करने के भिन्न भिन्न मार्ग हैं। पुराने सभी वर्णन वैभारगिरि को प्रथम पहाड़ मानते हैं पर

हुए थे। कवि हंससोम यहाँ ६ मन्दिर, जयकीर्ति यहां ५ मन्दिर जयविजय यहां ६ मन्दिर और सौभाग्यविजय यहां ८ मन्दिरों का वर्णन करते हैं, इस समय यहां ६ मंदिर विद्यमान हैं। इस गिरिराज का मार्ग (सड़क) अच्छा वना हुआ है। लोढों के संघ के समय १७ वीं शती में यहाँ जम्बू स्वामी, मेघकुमार, धन्ना, स्कंधक आदि की पादुकाएं थीं, जो अब नहीं है। अभी सर्व प्रथम अइमत्ता मुनि (अतिमुक्तककुमार—जिन्होंने अल्पवय में दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त किया) की देहरी आती है। दूसरे मन्दिर में महावीर प्रभु के चरण, तीसरे में चन्द्रप्रभु के चरण, चौथे में श्री महावीर प्रतिमा, पांचवें में मुनिसुव्रत स्वामी, और छट्ठे उत्तराभिमुख जिनालयमें मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा, आदिनाथ स्वामी और महावीर स्वामी के चरण विराजमान है प्रभु प्रतिमा राय धनपतसिंहजी निर्मापित तथा महावीर स्वामी के चरण सं० १६०० के व ऋषभदेव प्रभु के चरण सं० १८१६ (वैभारगिरि जीर्णोद्धार के समय स्थापित) के प्रतिष्ठित विराजमान है। प्रथम और अन्तिम दो मन्दिर श्वेताम्बर अवशिष्ट चारों मन्दिर दिगम्बर भाइयों के अधिकार में हैं। श्री महावीर स्वामी से वाल्यकाल में दीक्षित हो इस पहाड़ पर मोक्ष

हुए थे। कवि हंससोम यहाँ ६ मन्दिर, जयकीर्ति यहां ५ मन्दिर जयविजय यहां ६ मन्दिर और सौभाग्यविजय यहां ८ मन्दिरों का वर्णन करते हैं, इस समय यहां ६ मंदिर विद्यमान हैं। इस गिरिराज का मार्ग (सड़क) अच्छा बना हुआ है। लोढों के संघ के समय १७ वीं शती में यहां जम्बू स्वामी, मेघकुमार, धन्ना, स्कंधक आदि की पादुकाएं थीं, जो अब नहीं है। अभी सर्व प्रथम अइमत्ता मुनि (अतिमुक्तककुमार—जिन्होंने अल्पवय में दीक्षा लेकर निर्वाण प्राप्त किया) की देहरी आती है। दूसरे मन्दिर में महावीर प्रभु के चरण, तीसरे में चन्द्रप्रभु के चरण, चौथे में श्री महावीर प्रतिमा, पांचवें में मुनिसुव्रत स्वामी, और छट्ठे उत्तराभिमुख जिनालयमें मुनिसुव्रत स्वामी की प्रतिमा, आदिनाथ स्वामी और महावीर स्वामी के चरण विराजमान है प्रभु प्रतिमा राय धनपतसिंहजी निर्मापित तथा महावीर स्वामी के चरण सं० १९०० के व ऋषभदेव प्रभु के चरण सं० १८१९ (वैभारगिरि जीर्णोद्धार के समय स्थापित) के प्रतिष्ठित विराजमान है। प्रथम और अन्तिम दो मन्दिर श्वेताम्बर अवशिष्ट चारों मन्दिर दिगम्बर भाइयों के अधिकार में हैं। श्री महावीर स्वामी से बाल्यकाल में दीक्षित हो इस पहाड़ पर मोक्ष

प्रकाशित हो चुका है। सं० १६३८ में राय लछमीपतिसिंह धनपतसिंह ने अत्रस्थ जिनालयों का जीर्णोद्धार कराया था जिनके लेख नाहर जी के लेखाङ्क २४७-२४८ में मुद्रित है। विपुलगिरि के मन्दिरों का दर्शन कर द्वितीय पहाड़ रत्नगिरि जाने का मार्ग श्री मुनिसुव्रतप्रभु के जिनालय के पृष्ठ भाग से है।

२ रत्नगिरि

द्वितीय पहाड़ रत्नगिरि पर कुंवरपाल सोनपाल लोढा के संघ के समय सतरहवीं शती में ऋषभ जिनालय की विद्यमानता थी कवि जयविजय सं० १६६४ में प्रासाद द्वय का उल्लेख करते हैं। सौभाग्यविजय जी सं० १७५० में ३ जिनालय लिखते हैं। अब भी वहाँ ३ जिनालय विद्यमान है जिन में २ दिगम्बरों के एवं १ श्वेताम्बरों के अधिकार में है। दिगम्बराधिकृत एक मंदिर में मुनिसुव्रत, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ प्रभुकी चरणपादुकाएं और द्वितीय मंदिर में पुष्पदन्त और शीतलनाथ प्रभु की खंडित प्रतिमाएं और एक अस्पष्ट शिलालेख के अस्तित्व का दिगम्बर जैन डिरेक्टरी में उल्लेख है। श्वेताम्बर जिनालय उत्तराभिमुख श्री शान्तिनाथ स्वामी का है जिस में अभी नेमिनाथ,

प्रकाशित हो चुका है। सं० १९३८ में राय लछमीपतिसिंह धनपतसिंह ने अत्रस्थ जिनालयों का जीर्णोद्धार कराया था जिनके लेख नाहर जी के लेखाङ्क २४७-२४८ में मुद्रित है। विपुलगिरि के मन्दिरों का दर्शन कर द्वितीय पहाड़ रत्नगिरि जाने का मार्ग श्री मुनिसुव्रतप्रभु के जिनालय के पृष्ठ भाग से है।

२ रत्नगिरि

द्वितीय पहाड़ रत्नगिरि पर कुंवरपाल सोनपाल लोढा के संघ के समय सतरहवीं शती में ऋषभ जिनालय की विद्यमानता थी कवि जयविजय सं० १६६४ में प्रासाद द्वय का उल्लेख करते हैं। सौभाग्यविजय जी सं० १७५० में ३ जिनालय लिखते हैं। अब भी वहां ३ जिनालय विद्यमान है जिन में २ दिगम्बरों के एवं १ श्वेताम्बरों के अधिकार में है। दिगम्बराधिकृत एक मंदिर में मुनिसुव्रत, नेमिनाथ और पार्श्वनाथ प्रभुकी चरणपादुकाएं और द्वितीय मंदिर में पुष्पदन्त और शीतलनाथ प्रभु की खंडित प्रतिमाएं और एक अस्पष्ट शिलालेख के अस्तित्व का दिगम्बर जैन डिरेक्टरी में उल्लेख है। श्वेताम्बर जिनालय उत्तराभिमुख श्री शान्तिनाथ स्वामी का है जिस में अभी नेमिनाथ,

प्रभामंडल दिखाया गया है जो अभिलेखोत्कीर्णित होने के कारण पूर्ण वृत्ताकार न हो सका। भामण्डल में पांखुड़ियां बनी हुई हैं।

३ उदयगिरि

रत्नगिरि के मन्दिर के पृष्ट भाग से उतर कर उपत्यका में लंबी सफर करने पर तृतीय पहाड़ उदयगिरि आता है। दूसरा मार्ग कुण्ड से वाणगङ्गा जाने के डिस्ट्रिक वोर्ड की सड़क से भी है। प्रस्तुतः पर्वत चढ़ने में बहुत लम्बा नहीं पर खड़ी चढ़ाई वाला और प्राकृतिक सौन्दर्य्य में अद्वितीय है। यहां के चौमुख विहार का उल्लेख सं० १५६५ से सभी तीर्थमालाओं में हुआ है। मध्य में पार्श्वनाथ स्वामी का मुख्य जिनालय और चारों तरफ जगती में चार देहरियां वर्त्तमान है। यहीं ५ प्राचीनतम प्रतिमाएं एवं चार चरण पादुकाएं विराजमान है। सं० १८१६ में रत्नगिरि स्थित जिनालयों का जीर्णोद्धार कराने वाले हुगली निवासी साह माणकचन्द गान्धी ने अत्रस्थ प्रासाद का जीर्णोद्धार करवा के सं० १८२३ मिती वैशाख शुक्ला ६ के दिन श्री अभिनंदन, सुमतिनाथ और पार्श्वनाथ प्रभु के चरण प्रतिष्ठापित किये

प्रभामंडल दिखाया गया है जो अभिलेखोत्कीर्णित होने के कारण पूर्ण वृत्ताकार न हो सका। भामण्डल में पांखुड़ियां बनी हुई हैं।

३ उदयगिरि

रत्नगिरि के मन्दिर के पृष्ट भाग से उतर कर उपत्यका में लंबी सफर करने पर तृतीय पहाड़ उदयगिरि आता है। दूसरा मार्ग कुण्ड से बाणगङ्गा जाने के डिस्ट्रिक बोर्ड की सड़क से भी है। प्रस्तुत: पर्वत चढ़ने में बहुत लम्बा नहीं पर खड़ी चढ़ाई वाला और प्राकृतिक सौन्दर्य्य में अद्वितीय है। यहां के चौमुख विहार का उल्लेख सं० १५६५ से सभी तीर्थमालाओं में हुआ है। मध्य में पार्श्वनाथ स्वामी का मुख्य जिनालय और चारों तरफ जगती में चार देहरियां वर्त्तमान है। यहीं ५ प्राचीनतम प्रतिमाएं एवं चार चरण पादुकाएं विराजमान है। सं० १८१६ में रत्नगिरि स्थित जिनालयों का जीर्णोद्धार कराने वाले हुगली निवासी साह माणकचन्द गान्धी ने अत्रस्थ प्रासाद का जीर्णोद्धार करवा के सं० १८२३ मिती वैशाख शुक्ला ६ के दिन श्री अभिनंदन, सुमतिनाथ और पार्श्वनाथ प्रभु के चरण प्रतिष्ठापित किये

सुन्दर कमलासन पर पद्मासनस्थ विराजमान हैं। कमलासन के नीचे गुंथी हुई सर्पाकृति बड़ी ही सुन्दर और भारतीय प्राचीन तक्षणकला का अप्रतिम उदाहरण है। गुंथी हुई सर्पाकृति प्रभु के उभयपक्ष में होकर ऊपर को चली गयी है जिससे प्रतिमा के परिकर न होते हुए भी सपरिकर जैसी प्रतीत होती है। प्रभु के स्कंध प्रदेश से ऊपर केवल सप्तफण दिखाये गये हैं जो बड़े सुन्दर विशाल और प्रेक्षणीय हैं। प्रस्तुत प्रतिमा कब और किस भाग्यशाली ने निर्माण करायी इसे सूचित करने वाला कोई भी अभिलेख उत्कीर्णित नहीं है किन्तु शिल्पकला एवं मुखाकृति हमें गुप्तकाल में निर्मित मानने को बाध्य करती है क्योंकि इस प्रकार की कला गुप्तकालीन मूर्तियों में पायी जाती है। इस प्रकार की मूर्तियें अन्यत्र दुर्लभ हैं और जैन मूर्त्तिकला का अनुपम नमूना है।

मूल मन्दिर के सामने की देहरी में सप्तफण मंडित पार्श्व प्रभु की श्याम प्रतिमा है। कमलासनस्थित प्रभु के उभय पक्ष में इन्द्र व सिंहासनस्थ उभय सिंहों के दोनों तरफ चैत्यवन्दना करते हुए स्त्री पुरुष दिखाये हैं। इस प्रतिमा के सिंहासन पर "देवधम्मोयं र... विकस्य" लेख उत्कीर्णित है अग्रभाग में स्थापित सं० १८२३ में प्रतिष्ठापित अभिनन्दन

सुन्दर कमलासन पर पद्मासनस्थ विराजमान हैं। कमलासन के नीचे गुंथी हुई सर्पाकृति बड़ी ही सुन्दर और भारतीय प्राचीन तक्षणकला का अप्रतिम उदाहरण है। गुंथी हुई सर्पाकृति प्रभु के उभयपक्ष में होकर ऊपर को चली गयी है जिससे प्रतिमा के परिकर न होते हुए भी सपरिकर जैसी प्रतीत होती है। प्रभु के स्कंध प्रदेश से ऊपर केवल सप्तफण दिखाये गये हैं जो बड़े सुन्दर विशाल और प्रेक्षणीय हैं। प्रस्तुत प्रतिमा कब और किस भाग्यशाली ने निर्माण करायी इसे सूचित करने वाला कोई भी अभिलेख उत्कीर्णित नहीं है किन्तु शिल्पकला एवं मुखाकृति हमें गुप्तकाल में निर्मित मानने को बाध्य करती है क्योंकि इस प्रकार की कला गुप्तकालीन मूर्तियों में पायी जाती है। इस प्रकार की मूर्तियें अन्यत्र दुर्लभ हैं और जैन मूर्त्तिकला का अनुपम नमूना है।

मूल मन्दिर के सामने की देहरी में सप्तफण मंडित पार्श्व प्रभु की श्याम प्रतिमा है। कमलासनस्थित प्रभु के उभय पक्ष में इन्द्र व सिंहासनस्थ उभय सिंहों के दोनों तरफ चैत्यवन्दना करते हुए स्त्री पुरुष दिखाये हैं। इस प्रतिमा के सिंहासन पर "देवधम्मोयं र... विकस्य" लेख उत्कीर्णित है अग्रभाग में स्थापित सं० १८२३ में प्रतिष्ठापित अभिनन्दन

दिगम्बर जिनालय है आगे जाने पर ईंटों से बने प्राचीन विशाल जिनालयके छत-विहीन अवशेष अब भी विद्यमान हैं।

प्रस्तुतः गिरिराज से उतरनेका अलग मार्ग नहीं है इसी रास्ते से उतर कर नीचे आने पर तलहट्टिका में जैन श्वेताम्बर समाज का सुन्दर विश्रामगृह बना हुआ है जिस में यात्री लोगों के खाने पीने और आराम करने का प्रबन्ध है। यद्यपि पुरानी राजगृह की समस्त भूमि आर्कियोलोजिकल डिपार्टमैण्ट के आधीन होने के कारण नये सिरे से जमीन बेचना व मकान बनवाना निषिद्ध है पर श्वे० समाज के सार्वजनिक हित को ध्यान में रखकर गवर्नमेण्ट ने यहां भवन निर्माण की आज्ञा दी। यहाँ से चौथे पहाड़ स्वर्णगिरि जाने का मार्ग है।

(४) स्वर्णगिरि

चतुर्थ पहाड़ स्वर्णगिरि का चढ़ाव बहुत लम्बा है। चढ़े धूप में थके हुए प्रभु दर्शनेच्छु यात्री को लम्बी प्रतीक्षा से मन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं और वह थकावट शान्ति के रूप में परिणत हो जाती है। यहाँ दो

दिगम्बर जिनालय है आगे जाने पर ईंटों से बने प्राचीन विशाल जिनालयके छत-विहीन अवशेष अब भी विद्यमान हैं।

प्रस्तुत: गिरिराज से उतरनेका अलग मार्ग नहीं है इसी रास्ते से उतर कर नीचे आने पर तलहट्टिका में जैन श्वेताम्बर समाज का सुन्दर विश्रामगृह बना हुआ है जिस में यात्री लोगों के खाने पीने और आराम करने का प्रबन्ध है। यद्यपि पुरानी राजगृह की समस्त भूमि आर्कियोलोजिकल डिपार्टमैण्ट के आधीन होने के कारण नये सिरे से जमीन बेचना व मकान बनवाना निषिद्ध है पर श्वे० समाज के सार्वजनिक हित को ध्यान में रखकर गवर्नमेण्ट ने यहां भवन निर्माण की आज्ञा दी। यहाँ से चौथे पहाड़ स्वर्णगिरि जाने का मार्ग है।

(४) स्वर्णगिरि

चतुर्थ पहाड़ स्वर्णगिरि का चढ़ाव बहुत लम्बा है। चढ़े धूप में थके हुए प्रभु दर्शनेच्छु यात्री को लम्बी प्रतीक्षा से मन्दिर दृष्टिगोचर होते हैं और वह थकावट शान्ति के रूप में परिणत हो जाती है। यहाँ दो

समय के सं० १६३८ की प्रतिष्ठित श्री आदिनाथ और महावीर प्रभु की चरण पादुकायें विराजमान हैं।

द्वितीय मन्दिर दिगम्बरों का है जिसमें श्री शान्तिनाथ और महावीर स्वामीकी प्रतिमायें एवं आदिनाथ, नेमिनाथ जिनेश्वर के चरण विराजमान हैं।

तृतीय लघु मन्दिर भी दिगम्बरों का है, इसकी प्रतिमा बड़ी सुन्दर और प्राचीन थी। इसमें जो सुन्दर परिकर लगाया हुआ है वह प्रस्तुत प्रतिमाका न होकर किसी भिन्न स्थापत्य का अवशेष है, उभय पक्ष में किन्नर किन्नरी संगीत की तान में मस्त हो मस्तक धुनते हुए भक्ति सिक्त भाव-भङ्गिमा को धारण किये स्थित हैं। दाहिनी ओर किन्नर अपने बांये स्कंध पर वीणा रख कर दाहिने हाथ से बजा रहा है दोनों के गले में जनेऊ तथा गले में हंसली एवं भुजाओं में बाजूबंद पहिने हुए हैं। इनका अंग विन्यास बड़ा विचित्र और स्थूलकाय है। इनके उपरिभाग में पुष्पमाला लिए हुए आकाशस्थित देवों की मूर्त्तियाँ हैं। परिकरोपरि विशाल छत्र लगा हुआ एवं अशोकवृक्ष के पत्ते उभय पक्ष में दृष्टिगोचर होते है। मध्यस्थित प्रभु प्रतिमा के उभय पक्ष में चामरधारी खड़े हुए हैं जिनका अंगविन्यास सुन्दर है। प्रभु के उपरिभाग में छत्र व

समय के सं० १६३८ की प्रतिष्ठित श्री आदिनाथ और महावीर प्रभु की चरण पादुकायें विराजमान हैं।

द्वितीय मन्दिर दिगम्बरों का है जिसमें श्री शान्तिनाथ और महावीर स्वामीकी प्रतिमायें एवं आदिनाथ, नेमिनाथ जिनेश्वर के चरण विराजमान हैं।

तृतीय लघु मन्दिर भी दिगम्बरों का है, इसकी प्रतिमा बड़ी सुन्दर और प्राचीन थी। इसमें जो सुन्दर परिकर लगाया हुआ है वह प्रस्तुत प्रतिमाका न होकर किसी भिन्न स्थापत्य का अवशेष है, उभय पक्ष में किन्नर किन्नरी संगीत की तान में मस्त हो मस्तक धुनते हुए भक्ति सिक्त भाव-भङ्गिमा को धारण किये स्थित हैं। दाहिनी ओर किन्नर अपने बांये स्कंध पर वीणा रख कर दाहिने हाथ से बजा रहा है दोनों के गले में जनेऊ तथा गले में हंसली एवं भुजाओं में बाजूबंद पहिने हुए हैं। इनका अंग विन्यास बड़ा विचित्र और स्थूलकाय है। इनके उपरिभाग में पुष्पमाला लिए हुए आकाशस्थित देवों की मूर्त्तियाँ हैं। परिकरोपरि विशाल छत्र लगा हुआ एवं अशोकवृक्ष के पत्ते उभय पक्ष में दृष्टिगोचर होते है। मध्यस्थित प्रभु प्रतिमा के उभय पक्ष में चामरधारी खड़े हुए हैं जिनका अंगविन्यास सुन्दर है। प्रभु के उपरिभाग में छत्र व

मणियार मठ

यह स्थान सोनभंडार नामक वैभारगिरि की सुप्रसिद्ध गुफा के सामने की तरफ इस नाम से प्रसिद्ध है। जैन साहित्यकार इसे सदा से राजगृह के धनाढ्य सेठ शालिभद्र का निर्माल्य कूप, निर्मला कूइ, गहणा कूआ, शालिभद्र कूप आदि नामों से सम्बोधन करते आये हैं। शालिभद्र की कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है। ये गोभद्र सेठ के पुत्र थे उनके ३२ स्त्रियां थी अपार धनराशि के स्वामी होने के साथ साथ अमीर इतने थे कि हरदम सत मंजिले मकान में विलास करते रहते और महाराजा श्रेणिक जैसे प्रतापी मगधदेशाधिपति को भी नहीं जानते थे और सूर्य के उदय अस्त का भी उन्हें पता नहीं था। एक वार १६ रत्नकंवल जिन्हें महाराजा श्रेणिक न खरीद सका, इनकी माताने २० लाख स्वर्ण मुद्राओं में खरीद कर इनकी स्त्रियों को दी जिन्हें उन्होंने दूसरे दिन महतरनी को दे डाली क्यों कि उनका यही नियम था कि पहिले दिन पहिने वस्त्राभरण दूसरे दिन निर्माल्य कूप में फेंक देतीं एवं वस्त्रों को महतरनी आदि को दे डालतीं। शालिभद्रका पिता गोभद्र सेठ देव हुआ था और वह प्रति दिन ३३ पेटियां वस्त्राभरण की देवलोक से भेजता था, इस से शालिभद्र के घर में कोई वस्तु की कमी नहीं थी।

मणियार मठ

यह स्थान सोनभंडार नामक वैभारगिरि की सुप्रसिद्ध गुफा के सामने की तरफ इस नाम से प्रसिद्ध है। जैन साहित्यकार इसे सदा से राजगृह के धनाढ्य सेठ शालिभद्र का निर्माल्य कूप, निर्मला कूइ, गहणा कूआ, शालिभद्र कूप आदि नामों से सम्बोधन करते आये हैं। शालिभद्र की कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है। ये गोभद्र सेठ के पुत्र थे उनके ३२ स्त्रियां थी अपार धनराशि के स्वामी होने के साथ साथ अमीर इतने थे कि हरदम सत मंजिले मकान में विलास करते रहते और महाराजा श्रेणिक जैसे प्रतापी मगधदेशाधिपति को भी नहीं जानते थे और सूर्य के उदय अस्त का भी उन्हें पता नहीं था। एक बार १६ रत्नकंबल जिन्हें महाराजा श्रेणिक न खरीद सका, इनकी माताने २० लाख स्वर्ण मुद्राओं में खरीद कर इनकी स्त्रियों को दी जिन्हें उन्होंने दूसरे दिन महतरनी को दे डाली क्यों कि उनका यही नियम था कि पहिले दिन पहिने वस्त्राभरण दूसरे दिन निर्माल्य कूप में फेंक देतीं एवं वस्त्रों को महतरनी आदि को दे डालतीं। शालिभद्रका पिता गोभद्र सेठ देव हुआ था और वह प्रति दिन ३३ पेटियां वस्त्राभरण की देवलोक से भेजता था, इस से शालिभद्र के घर में कोई वस्तु की कमी नहीं थी।

जैन मन्दिर था जिस में शालिभद्र के नामोल्लेख वाली महत्वपूर्ण अर्हन्त प्रतिमा विद्यमान थी। सरकारी पुरातत्व विभाग के लोगों ने खुदाई के निमित्त मन्दिर और मूर्त्तिको हटा दिया सन् १६०५-६ ई० की आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्टस के पृ०-१०३ में उपर्युक्त मूर्तिका शिलालेख छपा है। है उक्त लेख में "......राजगृहे नागस्य शालिभद्र कस्य ......" पाठ मिलता है। स्वर्गीय पूरणचन्द्रजी नाहर का लेख "राजगृह और नालंदा" ओसवाल नवयुवक वर्ष ८ सं० ३ में प्रकाशित हुआ है उसमें आपने लिखा है कि "मैंने इस लेख सहित मूर्त्ति की सरकारी दफ्तरों और अजायबघरों में विशेष खोज की थी परन्तु खेद है कि अद्यावधि कोई पता नहीं लगा" महाभारत के सभापर्व के अध्याय २१ के ६ वें श्लोक में "मणिनाग" स्थान का उल्लेख है संभव है वह इसी स्थान का सूचक हो। प्राचीन मणिनाग से इस लेख के "नागस्य शब्द" का सम्बन्ध सूचित होता है। यहां के मन्दिर में जो शालिभद्रजी के चरणपादुका प्रतिष्ठित थे जिनका लेख नाहरजी ने लेखाङ्क १८५८ में प्रकाशित किया है, विदित होता है कि सं० १८३७ माघ सुदि ५ को ओसवाल विराणी मोतुलाल की भार्या सतावो बीबीने इन चरणों की स्थापना की थी।

जैन मन्दिर था जिस में शालिभद्र के नामोल्लेख वाली महत्वपूर्ण अर्हन्त प्रतिमा विद्यमान थी। सरकारी पुरातत्व विभाग के लोगों ने खुदाई के निमित्त मन्दिर और मूर्तिको हटा दिया सन् १९०५-६ ई० की आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्टस के पृ०-१०३ में उपर्युक्त मूर्तिका शिलालेख छपा है। है उक्त लेख में "......राजगृहे नागस्य शालिभद्र कस्य......" पाठ मिलता है। स्वर्गीय पूरणचन्द्रजी नाहर का लेख "राजगृह और नालंदा" ओसवाल नवयुवक वर्ष ८ सं० ३ में प्रकाशित हुआ है उसमें आपने लिखा है कि "मैंने इस लेख सहित मूर्ति की सरकारी दफ्तरों और अजायबघरों में विशेष खोज की थी परन्तु खेद है कि अद्यावधि कोई पता नहीं लगा" महाभारत के सभापर्व के अध्याय २१ के ९ वें श्लोक में "मणिनाग" स्थान का उल्लेख है संभव है वह इसी स्थान का सूचक हो। प्राचीन मणिनाग से इस लेख के "नागस्य शब्द" का सम्बन्ध सूचित होता है। यहां के मन्दिर में जो शालिभद्रजी के चरणपादुका प्रतिष्ठित थे जिनका लेख नाहरजी ने लेखाङ्क १८५८ में प्रकाशित किया है, विदित होता है कि सं० १८३७ माघ सुदि ५ को ओसवाल विराणी मोतुलाल की भार्या सतावो बीबीने इन चरणों की स्थापना की थी।

जा चुका है। वैभारगिरि पर चढ़ते ही सर्व प्रथम वड़े पाषाण खंडसे निर्मित सुन्दर स्थान है जिसे लोग जरासन्ध की वैठक कहते हैं यह वही स्थान है जिसे वौद्ध ग्रन्थों में पिप्पल गुहा लिखा है। इसमें कई छोटी छोटी गुफाएं हैं एवं निर्माण कला प्रशंसनीय है। भगवान महावीर के समौशरण अधिकांश इसी पहाड़ के ऊपर मैदान में हुआ करते थे जहां अभी जिनालय वने हुए हैं। श्री जिनप्रभसूरिजी ने वैभारगिरि कल्प में तथा दूसरे यात्री मुनिगण ने इस गिरिराज की वड़ी स्तवना की है। दादासाहव श्रीजिनकुशलसूरिजी ने मन्त्रिदलीय ठ० अचल सिंह निर्मापित चतुर्विंशति जिनालयके योग्य जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठा की थी उनमें से अव कुछ भी वहां अवशेप नहीं। यही दशा खरतरगच्छीय लोकहिताचार्यजी द्वारा प्रतिष्ठित विम्व—मन्दिरों की है।

श्री जिनवर्द्धनसूरिजी अत्रस्थित जिनालयों की संख्या नहीं लिखते परन्तु मुनिसुव्रत स्वामी, नेमिनाथ स्वामी तथा दूसरे जिनालयों के अतिरिक्त गौतमादि गणधर स्तूप वंदना का हाल देते हैं। कवि हंससोम २४ प्रासादों में ७०० जिनविम्व, अर्द्धकोश आगे गणधर मन्दिर का उल्लेख करने के साथ साथ धन्नासालिभद्र काउसग्गिया जो उसी शताब्दी में प्रतिष्ठित हो चुके थे—एवं रोहणिया वीर की

जा चुका है। वैभारगिरि पर चढ़ते ही सर्व प्रथम वड़े पाषाण खंडसे निर्मित सुन्दर स्थान है जिसे लोग जरासन्ध की वैठक कहते हैं यह वही स्थान है जिसे वौद्ध ग्रन्थों में पिप्पल गुहा लिखा है। इसमें कई छोटी छोटी,गुफाएं हैं एवं निर्माण कला प्रशंसनीय है। भगवान महावीर के समौशरण अधिकांश इसी पहाड़ के ऊपर मैदान में हुआ करते थे जहां अभी जिनालय वने हुए हैं। श्री जिनप्रभसूरिजी ने वैभारगिरि कल्प में तथा दूसरे यात्री मुनिगण ने इस गिरिराज की वड़ी स्तवना की है। दादासाहव श्रीजिनकुशलसूरिजी ने मन्त्रिदलीय ठ० अचल सिंह निर्मापित चतुर्विंशति जिनालयके योग्य जिन मूर्तियों की प्रतिष्ठा की थी उनमें से अव कुछ भी वहां अवशेष नहीं। यही दशा खरतरगच्छीय लोकहिताचार्यजी द्वारा प्रतिष्ठित विम्व—मन्दिरों की है।

श्री जिनवर्द्धनसूरिजी अत्रस्थित जिनालयों की संख्या नहीं लिखते परन्तु मुनिसुव्रत स्वामी, नेमिनाथ स्वामी तथा दूसरे जिनालयों के अतिरिक्त गौतमादि गणधर स्तूप वंदना का हाल देते हैं। कवि हंससोम २४ प्रासादों में ७०० जिनविम्व, अर्द्धकोश आगे गणधर मन्दिर का उल्लेख करने के साथ साथ धन्नासालिभद्र काउसग्गिया - जो उसी शताब्दी में प्रतिष्ठित हो चुके थे—एवं रोहणिया चीर की

हकूमतराय प्रतिष्ठापित शान्तिनाथ स्वामी के चरण हैं। दूसरे मन्दिर की मध्यस्थित देहरी में शान्तिनाथ स्वामी के चरण तथा चारों तरफ की चार देवकुलिकाओं में नेमिनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और आदिनाथ भगवान के चरण हैं। इन दोनों मन्दिरों के वीच से एक रास्ता वांये हाथ की ओर जाता है जहाँ धन्ना शालिभद्र जी का मन्दिर वना हुआ है मंदिर में सं० १५२४ में कमलसंयमोपाध्याय प्रतिष्ठित मुनि युगल की प्राचीन मूर्त्ति तथा एक नवीन मूर्त्ति विराजमान है।

चतुर्थ पूर्वाभिमुख विशाल मन्दिर मुनिसुव्रत स्वामी का है। सं० १६२१ पालीताना में प्रतिष्ठित श्वेत प्रतिमा वड़ी मनोज्ञ है दाहिनी ओर वीर प्रभु के चरण हैं गर्भगृह से वाहर दाहिनी ओर गौतम स्वामी की टूँक से लाये हुए ११ गणधर चरण विराजमान है वांये तरफ महावीर स्वामी की श्याम प्रतिमा है। यहां से पावापुरी जी का नयनाभिराम जलमंदिर वड़ा ही सुहावना दृष्टिगोचर होता है। एकादश गणधर पादुका सं० १८३० मा० शु० ५ को जगतसेठ फतैचंद्र जी गैलड़ा के पौत्र जगतसेठ महत्तावराय की पत्नी शृंगारदेवी के निर्माण करवा कर वैभारगिरि पर स्थापित करने का अभिलेख विद्यमान है। दादासाहव श्रीजिनदत्तसूरिजी के चरण सं० १६८५ में श्री जिनचारित्रसूरि प्रतिष्ठित है अत्रस्थित मंदिरों

हकूमतराय प्रतिष्ठापित शान्तिनाथ स्वामी के चरण हैं। दूसरे मन्दिर की मध्यस्थित देहरी में शान्तिनाथ स्वामी के चरण तथा चारों तरफ की चार देवकुलिकाओं में नेमिनाथ, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और आदिनाथ भगवान के चरण हैं। इन दोनों मन्दिरों के बीच से एक रास्ता बांये हाथ की ओर जाता है जहाँ धन्ना शालिभद्र जी का मन्दिर बना हुआ है मंदिर में सं० १५२४ में कमलसंयमोपाध्याय प्रतिष्ठित मुनि युगल की प्राचीन मूर्त्ति तथा एक नवीन मूर्त्ति विराजमान है।

चतुर्थ पूर्वाभिमुख विशाल मन्दिर मुनिसुव्रत स्वामी का है। सं० १९२१ पालीताना में प्रतिष्ठित श्वेत प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ है दाहिनी ओर वीर प्रभु के चरण हैं गर्भगृह से बाहर दाहिनी ओर गौतम स्वामी की टूँक से लाये हुए ११ गणधर चरण विराजमान है बांये तरफ महावीर स्वामी की श्याम प्रतिमा है। यहां से पावापुरी जी का नयनाभिराम जलमंदिर बड़ा ही सुहावना दृष्टिगोचर होता है। एकादश गणधर पादुका सं० १८३० मा० शु० ५ को जगतसेठ फतैचंद्र जी गेलड़ा के पौत्र जगतसेठ महतावराय की पत्नी शृंगारदेवी के निर्माण करवा कर वैभारगिरि पर स्थापित करने का अभिलेख विद्यमान है। दादासाहब श्रीजिनदत्तसूरिजी के चरण सं० १९८५ में श्री जिनचारित्रसूरि प्रतिष्ठित है अत्रस्थित मंदिरों

गौतम बुद्ध के निर्वाण (ई० पूर्व ५४३) समय में बौद्ध श्रमणों की परिषद् एकत्र हुई थी। पूर्वी गुफा ५५ फीट लम्बी व १६ फीट चौड़ी है। दूसरी गुफा प्रथम से ५० फीट पश्चिम में अवस्थित है जिसकी गहराई ४७ फीट चौड़ाई २५ फीट और ११ फीट ऊँची है। इस गुफा में जानेवाले को कहीं खड़े कहीं बैठे और कहीं रेंग कर जाने पर भी थाह नहीं मिलता। इन्हीं शतपर्णी गुफाओं के नीचे वैभारगिरि के पास शतपर्णी मण्डप अजातशत्रु द्वारा निर्माण होने का उल्लेख बौद्ध साहित्य में पाया जाता है। सुना है कि अब भी जंगल में उसके खंडहर विद्यमान हैं।

खंडहर—मध्यस्थित जैन मन्दिर के दाहिनी ओर राजकीय पुरातत्त्व विभाग ने खुदाई करके दो प्राचीन मन्दिर निकाले हैं। जिन में एक महादेवजीका मन्दिर है जिसका उल्लेख सं० १६५७ के यात्रा वर्णन में कवि जयकीर्त्ति ने किया है। दूसरा उसीके पास कई देवकुलिकामय विशाल ५२ जिनालय नाम से प्रसिद्ध मंदिर निकला है जो खण्डहर रूप से विहार गवर्नमेंण्ट के पुरातत्त्व विभागके संरक्षण में है। अभी प्रस्तुत मंदिर की अर्द्ध दिवालों के अतिरिक्त छत्त किसीका भी अवशेष नहीं है गर्भगृह और इतर देहरियां जब कि समतल भूमि में है, एक देहरी में प्रवेश कर कई पैड़ियां नीचे उतरना

गौतम बुद्ध के निर्वाण (ई० पूर्व ५४३) समय में बौद्ध श्रमणों की परिषद् एकत्र हुई थी। पूर्वी गुफा ५५ फीट लम्बी व १६ फीट चौड़ी है। दूसरी गुफा प्रथम से ५० फीट पश्चिम में अवस्थित है जिसकी गहराई ४७ फीट चौड़ाई २५ फीट और ११ फीट ऊँची है। इस गुफा में जानेवाले को कहीं खड़े कहीं बैठे और कहीं रेंग कर जाने पर भी थाह नहीं मिलता। इन्हीं शतपर्णी गुफाओं के नीचे वैभारगिरि के पास शतपर्णी मण्डप अजातशत्रु द्वारा निर्माण होने का उल्लेख बौद्ध साहित्य में पाया जाता है। सुना है कि अब भी जंगल में उसके खंडहर विद्यमान हैं।

खंडहर—मध्यस्थित जैन मन्दिर के दाहिनी ओर राजकीय पुरातत्त्व विभाग ने खुदाई करके दो प्राचीन मन्दिर निकाले हैं। जिन में एक महादेवजीका मन्दिर है जिसका उल्लेख सं० १६५७ के यात्रा वर्णन में कवि जयकीर्त्ति ने किया है। दूसरा उसीके पास कई देवकुलिकामय विशाल ५२ जिनालय नाम से प्रसिद्ध मंदिर निकला है जो खण्डहर रूप से विहार गवर्नमेंण्ट के पुरातत्त्व विभागके संरक्षण में है। अभी प्रस्तुत मंदिर की अर्द्ध दिवालों के अतिरिक्त छत किसीका भी अवशेष नहीं है गर्भगृह और इतर देहरियां जब कि समतल भूमि में है, एक देहरी में प्रवेश कर कई पैड़ियां नीचे उतरना

पर सोयी हुई हैं। चामरधारिणी के भी इसी प्रकार के वस्त्राभरण पहने हुए हैं।

प्रभु के बांये तरफ के आले में दूसरी चन्द्रप्रभ स्वामी की प्राचीन प्रतिमा है जिसके उभयपक्ष में तीन-तीन अर्हन्त प्रतिमाएँ और उनके निम्नभाग में चामर डुलाते हुए इन्द्र एवं ऊपरिभाग में अधरस्थित देव एवं अदृश्य देव दुन्दुभि व छत्रत्रय विराजमान है। प्रभु कमलासन पर विराजमान हैं, निम्नवर्त्ती सिंहासन के उभयपक्ष में सिंह मध्य में चन्द्र लांछन के नीचे धर्मचक्र उत्कीर्णित है।

तीसरी ऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा बड़ी सुन्दर और प्राचीन है। प्रस्तुत: प्रतिमा के उभयपक्ष में इन्द्र अवस्थित हैं जिन की धोती के सल तथा अलंकारादि का चिन्ह स्पष्ट है। तदुपरि पुष्पमालाधारी देव अप्सराएं एवं चामर छत्रादि प्रतिहार्य हैं। प्रभु के मस्तकोपरि अलंकृत जटाजूट और स्कंध प्रदेश पर लटकती हुई केशावली बड़ी मनोहर प्रतीत होती हैं। भामंडल के पीछे छत्रत्रय के उभयपक्ष में दो हाथ हैं जिनमें वलय पहिने हुए हैं। बांया हाथ आशीर्वादात्मक एवं दाहिने हाथ में अंगूठे व तर्जनी के मध्य में वस्त्र जैसी वस्तु है। इस प्रतिमा के पादपीठ पर चिन्ह स्वरूप पुष्टकाय वृषभ युगल बैठे हुए हैं जिनके मध्य में त्रिगढ़े पर धर्मचक्र

पर सोयी हुई हैं। चामरधारिणी के भी इसी प्रकार के वस्त्राभरण पहने हुए हैं।

प्रभु के वांये तरफ के आले में दूसरी चन्द्रप्रभ स्वामी की प्राचीन प्रतिमा है जिसके उभयपक्ष में तीन-तीन अर्हन्त प्रतिमाएँ और उनके निम्नभाग में चामर ढुलाते हुए इन्द्र एवं ऊपरिभाग में अधरस्थित देव एवं अदृश्य देव दुन्दुभि व छत्रत्रय विराजमान है। प्रभु कमलासन पर विराजमान हैं, निम्नवर्त्ती सिंहासन के उभयपक्ष में सिंह मध्य में चन्द्र लांछन के नीचे धर्मचक्र उत्कीर्णित है।

तीसरी ऋषभदेव स्वामी की प्रतिमा बड़ी सुन्दर और प्राचीन है। प्रस्तुतः प्रतिमा के उभयपक्ष में इन्द्र अवस्थित हैं जिन की धोती के सल तथा अलंकारादि का चिन्ह स्पष्ट है। तदुपरि पुष्पमालाधारी देव अप्सराएं एवं चामर छत्रादि प्रतिहार्य हैं। प्रभु के मस्तकोपरि अलंकृत जटाजूट और स्कंध प्रदेश पर लटकती हुई केशावली बड़ी मनोहर प्रतीत होती हैं। भामंडल के पीछे छत्रत्रय के उभयपक्ष में दो हाथ हैं जिनमें वलय पहिने हुए हैं। वांया हाथ आशीर्वादात्मक एवं दाहिने हाथ में अंगूठे व तर्जनी के मध्य में वस्त्र जैसी वस्तु है। इस प्रतिमा के पादपीठ पर चिन्ह स्वरूप पुष्टकाय वृषभ युगल बैठे हुए हैं जिनके मध्य में त्रिगढ़े पर धर्मचक्र

ऊंची पट्टिका विराजमान है जिसमें वृक्षोपरि पद्मासन स्थित अर्हन्त प्रतिमा १॥ इंच की उत्कीर्णित है। वृक्ष की छाया में दाहिनी ओर एक यक्ष मूर्त्ति है जिसका दाहिना गोडा ऊंचा और वांया गोडा नीचा किया हुआ है। दाहिने हाथ में कुछ आयुध और वांया हाथ गोडे पर रखा हुआ है। इसके वाम पार्श्व में देवी-यक्षिणी की मूर्त्ति विराजित है जिसका भी दाहिना गोडा ऊंचा और वांये गोडे पर एक वालक अवस्थित है। वालक का हाथ माता के वांये स्तन पर और माता का वांया हाथ वालक की पीठ पर रखा हुआ है एवं दाहिने हाथ में आम्रलुंव धारण किया हुआ प्रतीत होता है। उभय मूर्त्तियों के गले में हार पहिना हुआ है। जिस वृक्ष की धड़ पर अर्हन्त प्रतिमा विराजित है पत्ते लंवे आकार के हैं।" प्रस्तुत: मूर्त्ति भी इसी प्रकार की है इसमें विशेषता यह है कि पादपीठ पर पांच मूर्त्तिएं उत्कीर्णित है जिनका दाहिना गोडा ऊंचा और वांया गोडा नीचा है हाथों द्वारा माला-जाप किया जा रहा है। इस प्रकार की उपलब्ध प्राचीन जैन मूर्त्तियां नहीं कहा जा सकता कि किस कथावस्तु से सम्वन्धित भावों की प्रतीक हैं? जैन शास्त्रों में जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्षादि पर शास्वत प्रतिमाओं का वर्णन आता है हमारे कलाभवन में एक

ऊंची पट्टिका विराजमान है जिसमें वृक्षोपरि पद्मासन स्थित अर्हन्त प्रतिमा १॥ इंच की उत्कीर्णित है। वृक्ष की छाया में दाहिनी ओर एक यक्ष मूर्त्ति है जिसका दाहिना गोडा ऊंचा और वांया गोडा नीचा किया हुआ है। दाहिने हाथ में कुछ आयुध और वांया हाथ गोडे पर रखा हुआ है। इसके वाम पार्श्व में देवी-यक्षिणी की मूर्त्ति विराजित है जिसका भी दाहिना गोडा ऊंचा और वांये गोडे पर एक वालक अवस्थित है। वालक का हाथ माता के वांये स्तन पर और माता का वांया हाथ वालक की पीठ पर रखा हुआ है एवं दाहिने हाथ में आम्रलुंब धारण किया हुआ प्रतीत होता है। उभय मूर्त्तियों के गले में हार पहिना हुआ है। जिस वृक्ष की धड़ पर अर्हन्त प्रतिमा विराजित है पत्ते लंवे आकार के हैं।" प्रस्तुतः मूर्त्ति भी इसी प्रकार की है इसमें विशेषता यह है कि पादपीठ पर पांच मूर्त्तिएं उत्कीर्णित है जिनका दाहिना गोडा ऊंचा और वांया गोडा नीचा है हाथों द्वारा माला-जाप किया जा रहा है। इस प्रकार की उपलब्ध प्राचीन जैन मूर्त्तियां नहीं कहा जा सकता कि किस कथावस्तु से सम्वन्धित भावों की प्रतीक हैं? जैन शास्त्रों में जम्बूवृक्ष, शाल्मलीवृक्षादि पर शास्वत प्रतिमाओं का वर्णन आता है हमारे कलाभवन में एक

होता है कि सं० १५०४ में फाल्गुन शुक्ला नवमी को महत्तियाण जाटड़ गोत्रीय सं० देवराज के पौत्र सं० जिनदास ने भगवान महावीर की प्रतिमा निर्माण कराके खरतरगच्छीय श्री जिनसागरसूरिजी की आज्ञा से वाचनाचार्य शुभशीलगणि से प्रतिष्ठित करवायी।

यह खण्डहर और यहाँ की गुप्तकालीन प्राचीन मूर्त्तियां इस ध्वस्तावस्था में भी राजगृह तीर्थ के अतीत गौरव और कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए पर्याप्त हैं। कतिपय मूर्त्तियां तो इतनी सुन्दर, सुडौल और भावपूर्ण हैं कि दर्शक निर्निमेष दृष्टि से निहारता हुआ अज्ञात शिल्पी की सूक्ष्म व सधी हुई टांकी की कारीगरी के वैशिष्ट्य के साथ २ अपने हृदय में सहस्राब्दी पूर्व की सांस्कृतिक चेतना लहर को प्रवाहित कर उन शान्त भावों को जागृत करने में सफल होता है जिसके लिए चिर साधना अपेक्षित है।

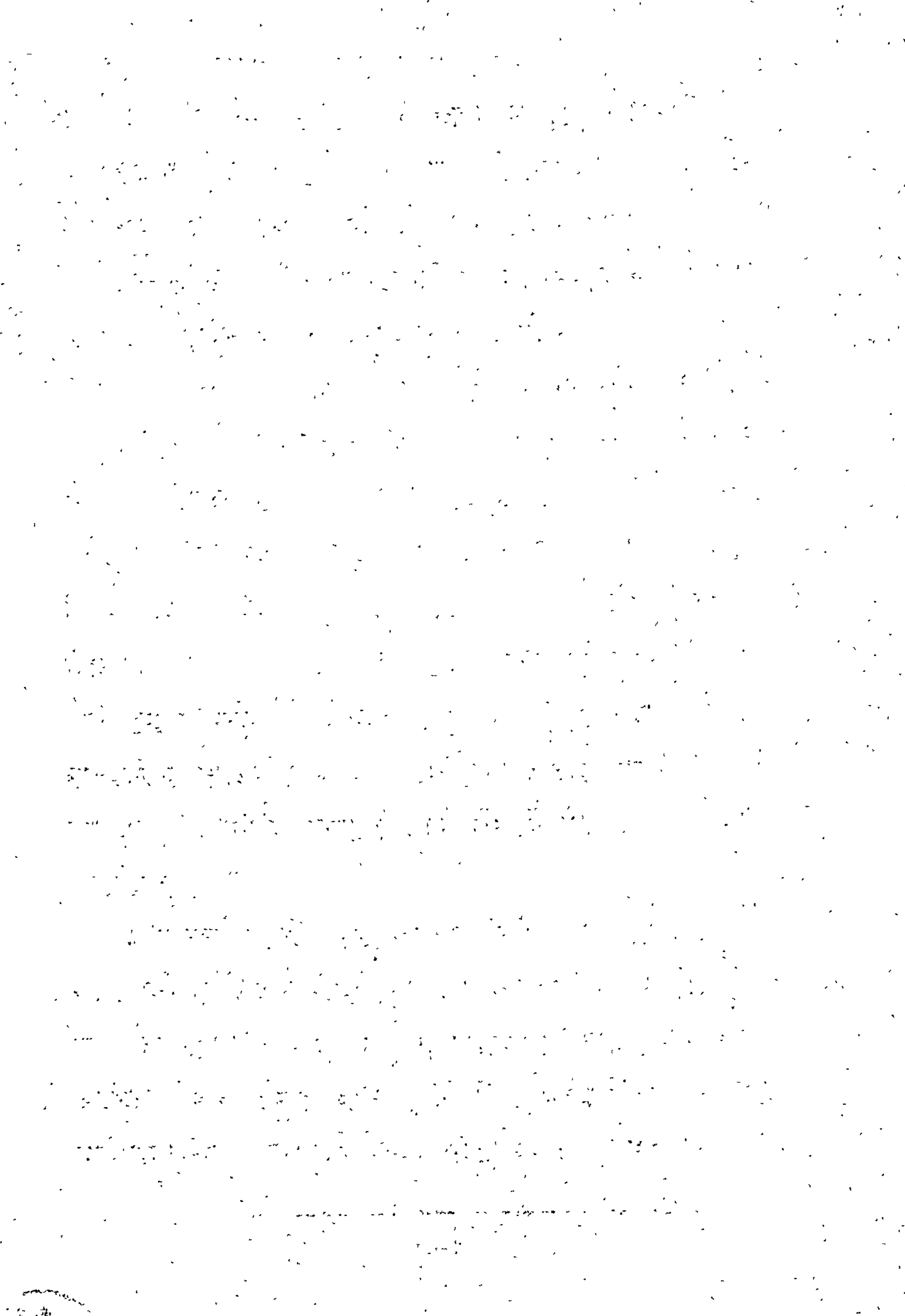
अम्बिकादेवी की एक प्रतिमा जिसे विद्वानों ने त्रिशला माता की मूर्त्ति माना था अत्यन्त सुन्दर एवं दर्शनीय है। एक आम्रवृक्ष की छाया में सिंहासन पर कमलोपरि अम्बिका माता विराजमान हैं सिंहों के मध्य में एक व्यक्ति दाहिना गोडा ऊंचा किये बांये गोडे पर हाथ रख कर बैठा

होता है कि सं० १५०४ में फाल्गुन शुक्ला नवमी को महत्तियाण जाटड़ गोत्रीय सं० देवराज के पौत्र सं० जिनदास ने भगवान महावीर की प्रतिमा निर्माण कराके खरतरगच्छीय श्री जिनसागरसूरिजी की आज्ञा से वाचनाचार्य शुभशीलगणि से प्रतिष्ठित करवायी।

यह खण्डहर और यहाँ की गुप्तकालीन प्राचीन मूर्त्तियां इस ध्वस्तावस्था में भी राजगृह तीर्थ के अतीत गौरव और कीर्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए पर्याप्त हैं। कतिपय मूर्त्तियां तो इतनी सुन्दर, सुडौल और भावपूर्ण हैं कि दर्शक निर्निमेष दृष्टि से निहारता हुआ अज्ञात शिल्पी की सूक्ष्म व सधी हुई टांकी की कारीगरी के वैशिष्ट्य के साथ २ अपने हृदय में सहस्राब्दी पूर्व की सांस्कृतिक चेतना लहर को प्रवाहित कर उन शान्त भावों को जागृत करने में सफल होता है जिसके लिए चिर साधना अपेक्षित है।

अम्बिकादेवी की एक प्रतिमा जिसे विद्वानों ने त्रिशला माता की मूर्त्ति माना था अत्यन्त सुन्दर एवं दर्शनीय है। एक आम्रवृक्ष की छाया में सिंहासन पर कमलोपरि अम्बिका माता विराजमान हैं सिंहों के मध्य में एक व्यक्ति दाहिना गोडा ऊंचा किये बांये गोडे पर हाथ रख कर बैठा





कमलासन के नीचे वाहन रूप एक सिंह बैठा है जब कि इसमें सिंहासन पर ही कमलासन है। उसमें दूसरा बालक गोडे के पास खड़ा है जिसका देवी ने हाथ पकड़ रखा है जिससे हाथ में आम्रलुंब का अभाव है। इसमें दूसरा बालक या कोइ भक्त परिचारिकाओं के निम्नभाग में चैत्यवन्दन करता हुआ हाथ जोड़े बैठा है जिसका दाहिना गोडा ऊंचा और बांया गोडा नीचे किया हुआ है। वह मूर्त्ति मन्दिराकृति में वृक्ष के नीचे है और यह वृक्षोपरि अर्हन्त प्रतिमा धारण किये हुए है कला की दृष्टि में यह प्रतिमा उससे और भी बढ़ी चढी है पर खुदाईके समय कई स्थानोंमें खण्डित हो गई है।

देवकुलिका नं० ८ में नेमिनाथ प्रभु की कसेड़ो रंग की विशाल प्रतिमा विराजमान है जिसके चिन्ह-लांछन स्वरूप संख उत्कीर्णित है। उभय पक्ष में ९ ग्रह की प्रतिमाएं परिकर में बनी हुई हैं जिसकी वेश भूषा १५०० वर्ष प्राचीन मालूम होती है। प्रस्तुतः प्रतिमा खण्डित है। नं० ९ देहरी में कायोत्सर्ग ध्यान में पांच अर्हन्त प्रतिमाएं वृक्ष के नीचे खड्गासनस्थ अवस्थित हैं। नं० १० एक देहरी में पार्श्वनाथ स्वामी की लालश्वेतधारीदार पाषाण की सप्तफणमण्डित सपरिकर प्रतिमा है इसमें अष्ट प्रतिहार्य व नवग्रह भी अंकित हैं। तत्पार्श्ववर्त्ती देहरी नं० ११ में भी पार्श्वनाथ भगवान की

कमलासन के नीचे वाहन रूप एक सिंह बैठा है जब कि इसमें सिंहासन पर ही कमलासन है। उसमें दूसरा बालक गोडे के पास खड़ा है जिसका देवी ने हाथ पकड़ रखा है जिससे हाथ में आम्रलुंब का अभाव है। इसमें दूसरा बालक या कोइ भक्त परिचारिकाओं के निम्नभाग में चैत्यवन्दन करता हुआ हाथ जोड़े बैठा है जिसका दाहिना गोडा ऊंचा और बांया गोडा नीचे किया हुआ है। वह मूर्त्ति मन्दिराकृति में वृक्ष के नीचे है और यह वृक्षोपरि अर्हन्त प्रतिमा धारण किये हुए है कला की दृष्टि में यह प्रतिमा उससे और भी बढ़ी चढी है पर खुदाईके समय कई स्थानोंमें खण्डित हो गई है।

देवकुलिका नं० ८ में नेमिनाथ प्रभु की कमेड़ी रंग की विशाल प्रतिमा विराजमान है जिसके चिन्ह-लांछन स्वरूप संख उत्कीर्णित है। उभय पक्ष में ९ ग्रह की प्रतिमाएं परिकर में बनी हुई हैं जिसकी वेश भूषा १५०० वर्ष प्राचीन मालूम होती है। प्रस्तुतः प्रतिमा खण्डित है। नं० ९ देहरी में कायोत्सर्ग ध्यान में पांच अर्हन्त प्रतिमाएं वृक्ष के नीचे खड्गासनस्थ अवस्थित हैं। नं० १० एक देहरी में पार्श्वनाथ स्वामी की लालश्वेतधारीदार पाषाण की सप्तफणमण्डित सपरिकर प्रतिमा है इसमें अष्ट प्रतिहार्य व नवग्रह भी अंकित हैं। तत्पार्श्ववर्त्ती देहरी नं० ११ में भी पार्श्वनाथ भगवान की

श्री नेमिनाथ स्वामी की है। अत्रस्थित अधिकांश प्रतिमाएं श्याम पाषण की हैं जब कि यह नीले रंग जैसी कोमल पाषाण की है। इसकी पद्मासन मुद्रा और निर्माण शैली देखते प्रतीत होता है कि पाषाण-फलक अधिक चौड़ा नहीं रहा होगा। इस प्रतिमा का मस्तक नष्ट हो जाने से दूसरा मस्तक लगा दिया हैं, छत्रादि अवशेष नहीं है। निम्न भाग में बना हुआ सिंहासन खास उल्लेखनीय है। इसके उभयपक्ष में किनारे पर दो सिंह अपने दो पैरों के बल खड़े हुए बड़े ही सुन्दर मालूम देते हैं। इनकी सुन्दर केशावली और अंगविन्यास पूर्व गुप्तकालीन कला का प्रतिनिधित्व करती है। तत्पार्श्व में दो अर्हन्त प्रतिमाएं पद्मासनस्थ विराजमान हैं जिनके पृष्टभाग में भामण्डल बना है और मध्य में संभवतः प्रभु के परमभक्त, त्रिखण्डाधिपति, यादवकुल तिलक श्री कृष्ण वासुदेव की खड़ी हुई मूर्त्ति है, ये प्रभु के चचेरे बड़े भ्राता थे। प्रस्तुतः मूर्त्ति बड़ी सुन्दर भक्तिसिक्त भावों की अभिव्यक्ति करने वाली एवं अलंकृत केशावली विराजित है, कानों में कुण्डल और गले में हार पहना हुआ है श्री कृष्ण के दाहिने हाथ में संख धारण किया हुआ है उभय भुजाओं के ऊपर से आए हुए लंबे दुपट्टे की छोर बांये हाथ में पकड़ कर भूमि स्पर्श होने से बचा लिया प्रतीत होता है

श्री नेमिनाथ स्वामी की है। अत्रस्थित अधिकांश प्रतिमाएं श्याम पाषण की हैं जब कि यह नीले रंग जैसी कोमल पाषाण की है। इसकी पद्मासन मुद्रा और निर्माण शैली देखते प्रतीत होता है कि पाषाण-फलक अधिक चौड़ा नहीं रहा होगा। इस प्रतिमा का मस्तक नष्ट हो जाने से दूसरा मस्तक लगा दिया हैं, छत्रादि अवशेष नहीं है। निम्न भाग में बना हुआ सिंहासन खास उल्लेखनीय है। इसके उभयपक्ष में किनारे पर दो सिंह अपने दो पैरों के बल खड़े हुए बड़े ही सुन्दर मालूम देते हैं। इनकी सुन्दर केशावली और अंगविन्यास पूर्व गुप्तकालीन कला का प्रतिनिधित्व करती है। तत्पार्श्व में दो अर्हन्त प्रतिमाएं पद्मासनस्थ विराजमान हैं जिनके पृष्ठभाग में भामण्डल बना है और मध्य में संभवतः प्रभु के परमभक्त, त्रिखण्डाधिपति, यादवकुल तिलक श्री कृष्ण वासुदेव की खड़ी हुई मूर्त्ति है, ये प्रभु के चचेरे बड़े भ्राता थे। प्रस्तुतः मूर्त्ति बड़ी सुन्दर भक्तिसिक्त भावों की अभिव्यक्ति करने वाली एवं अलंकृत केशावली विराजित है, कानों में कुण्डल और गले में हार पहना हुआ है श्री कृष्ण के दाहिने हाथ में संख धारण किया हुआ है उभय भुजाओं के ऊपर से आए हुए लंबे दुपट्टे की छोर बांये हाथ में पकड़ कर भूमि स्पर्श होने से बचा लिया प्रतीत होता है

हो सकती है गौतमस्वामी की टुंक के मार्ग में भी दो एक खण्डहर चिन्ह विद्यमान हो अत्रस्थित मन्दिरों की अधिकांश प्रतिमाएं अभी गांवमन्दिर के संग्रहालय में है। इन सबका परिचय आगे दिया गया है। मुनिसुव्रत जिनालय जाते दाहिनी ओर एक दिगम्बर जिनालय है जिस में कतिपय प्राचीन सुन्दर प्रतिमाएं हैं जिस में महावीर प्रभु की प्रतिमा बड़ी सुन्दर भव्य और प्राचीन है उभय पक्षस्थित इन्द्रों का अंग विन्यास बड़ा सुन्दर और तदुपरि पुष्पमालाधारिणी अप्सराएं एवं मस्तक पर छत्र विराजमान है। प्रभासण्डल इस प्रतिमा का गोल न होकर ऊपर से चौड़ा और नीचे से संकड़ा—पान जैसा प्रतीत होता है। सिंहासन पंच चतुष्किकासन १० कोण वाला है जिस में ९ चित्र उत्कीर्णित है मध्य में सिंह लांछन उभय पक्ष में चैत्य वंदन करते भक्त और अंत में सिंहासन के सिंह बने हुए हैं प्रभु प्रतिमा कमलासन पर विराजमान है। दूसरी दिगम्बर प्रतिमा खड्गासनस्थित है जिसके उभयपक्ष में चामरधारी इन्द्र खड़े हुए हैं। बेल पत्तियों से अलंकृत प्रभामण्डल के ऊपरि भाग में अधर स्थित अप्सराएं दिखायी गयी हैं। प्रभु के मस्तकोपरि घुंघराले बाल व छत्रत्रय विराजमान है। कमलासन के निम्नभाग में बड़े २ अक्षरों में उत्कीर्णित

हो सकती है गौतमस्वामी की टुंक के मार्गमें भी दो एक खण्डहर चिन्ह विद्यमान हो अत्रस्थित मन्दिरों की अधिकांश प्रतिमाएं अभी गांवमन्दिर के संग्रहालय में है। उन सबका परिचय आगे दिया गया है। मुनिसुव्रत जिनालय जाते दाहिनी ओर एक दिगम्बर जिनालय है जिस में कतिपय प्राचीन सुन्दर प्रतिमाएं हैं जिस में महावीर प्रभु की प्रतिमा बड़ी सुन्दर भव्य और प्राचीन है उभय पक्षस्थित इन्द्रों का अंग विन्यास बड़ा सुन्दर और तदुपरि पुष्पमालाधारिणी अप्सराएं एवं मस्तक पर छत्र विराजमान है। प्रभासण्डल इस प्रतिमा का गोल न होकर ऊपर से चौड़ा और नीचे से संकड़ा—पान जैसा प्रतीत होता है। सिंहासन पंच चतुष्किकासन १० कोण वाला है जिस में ९ चित्र उत्कीर्णित है मध्य में सिंह लांछन उभय पक्ष में चैत्य वंदन करते भक्त और अंत में सिंहासन के सिंह बने हुए हैं प्रभु प्रतिमा कमलासन पर विराजमान है। दूसरी दिगम्बर प्रतिमा खड्गासनस्थित है जिसके उभयपक्ष में चामरधारी इन्द्र खड़े हुए हैं। वेल पत्तियों से अलंकृत प्रभामण्डल के ऊपरि भाग में अधर स्थित अप्सराएं दिखायी गयी हैं। प्रभु के मस्तकोपरि घुंघराले बाल व छत्रत्रय विराजमान है। कमलासन के निम्नभाग में बड़े २ अक्षरों में उत्कीर्णित

है। अम्बिका माता के बायें गोड़े पर बालक बैठा हुआ है। दाहिना गोड़ा कमलासन के निम्नस्थित सिंह की पीठ पर अवस्थित है। सिंह अपने दोनों पंजे टिकाकर शान्त हो बैठा है उसके पास एक दूसरे खड़े हुए बालक का हाथ अम्बिका माता ने अपने करकमलों से पकड़ रखा है। बालकों के धोती पहिनी हुई है। माता की मुखाकृति शान्त सौम्य और लावण्यमयी होने के साथ साथ मातृत्त्व भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। मस्तोकोपरि मुकुट और कानों में धारण किये हुए कुण्डल तत्कालीन कर्णालंकार प्रथा पर प्रकाश डालते हैं। मस्तक पर बंधा हुआ केश पाशका जूड़ा घटाकृतिमय है पृष्ठ भाग में आम्रवृक्ष शोभायमान है। देवी के गले में दुलड़ा हार पहना हुआ है जिसका मध्य भाग चौड़ा और विशेष प्रकार से अलंकृत है। दूसरा हार खूब लंबा है जो उभय स्तनों के मध्यवर्त्ती होकर नाभितक पहुंचा हुआ है। इस हार के निम्नभाग में लोकेट बना हुआ है। अंकस्थित बालकने अपने दाहिने हाथ से हारको पकड़ रखा है। जो बाल सुलभ चापल्य का स्पष्ट द्योतक है। माता के भुजाओं में त्रिकोण भुजबन्द व प्रौढावस्था सूचक कटिप्रदेश में खूब मोटा कन्दोला पहिना हुआ है। इस में कोई सन्देह नहीं कि शरीर रचना बड़ी

है। अम्बिका माता के बायें गोड़े पर बालक बैठा हुआ है। दाहिना गोड़ा कमलासन के निम्नस्थित सिंह की पीठ पर अवस्थित है। सिंह अपने दोनों पंजे टिकाकर शान्त हो बैठा है उसके पास एक दूसरे खड़े हुए बालक का हाथ अम्बिका माता ने अपने करकमलों से पकड़ रखा है। बालकों के धोती पहिनी हुई है। माता की मुखाकृति शान्त सौम्य और लावण्यमयी होने के साथ साथ मातृत्त्व भाव की स्पष्ट अभिव्यक्ति दृष्टिगोचर होती है। मस्तोकोपरि मुकुट और कानों में धारण किये हुए कुण्डल तत्कालीन कर्णालंकार प्रथा पर प्रकाश डालते हैं। मस्तक पर बंधा हुआ केश पाशका जूड़ा घटाकृतिमय है पृष्ठ भाग में आम्रवृक्ष शोभायमान है। देवी के गले में दुलड़ा हार पहना हुआ है जिसका मध्य भाग चौड़ा और विशेष प्रकार से अलंकृत है। दूसरा हार खूब लंबा है जो उभय स्तनों के मध्यवर्त्ती होकर नाभितक पहुंचा हुआ है। इस हार के निम्नभाग में लोकेट बना हुआ है। अंकस्थित बालकने अपने दाहिने हाथ से हारको पकड़ रखा है। जो बाल सुलभ चापल्य का स्पष्ट द्योतक है। माता के भुजाओं में त्रिकोण भुजबन्द व प्रौढावस्था सूचक कटिप्रदेश में खूब मोटा कन्दोला पहिना हुआ है। इस में कोई सन्देह नहीं कि शरीर रचना बड़ी

प्रयोग भी इसे खोलने में असमर्थ रहे। द्वार का चिन्ह स्पष्ट है, पर कहाजाता है कि पुण्यवान् के विना तामसिक प्रयोगों से यह खुलनेवाला नहीं जो हो यह तो मानना पड़ेगा कि ऊपरी हिस्से में दरारें पड़ जाने पर भी सामने की दीवार का कुछ भी नहीं विगड़ा प्रस्तुतः गुफा के वाहर व भीतर कतिपय लेख खुदे हुए हैं जिन में कुछ ब्राह्मीलिपिके हैं। इन लेखों का परिचय इस प्रकार है—

(१) गुफा में प्रवेश करते ही सामने की सुदृढ़ दीवार पर लगभग ३ फीट लम्बा वड़े वड़े अक्षरों में ब्राह्मीलिपि का लेख खुदा हुआ है।

(२) स्वर्णभण्डार के प्रवेश द्वारपर कई लेख उत्कीर्णित हैं जिनके अक्षर वहुत कम और वड़े वड़े हैं :—

(A) यह १॥ फीट लम्वा है पर अक्षर ७-८ से अधिक नहीं हैं:

(B) इस में कुल ४ अक्षर है।

(C) यह लेख वाहर की दीवाल पर १॥ फीट लंवा और ऊंचा है।

(D) यह लेख गुफा के प्रवेश द्वार के आगे २ पंक्तियों में उत्कीर्णित है। जो इस इस प्रकार पढने में आता है :—

निर्व्वाण लाभाय तपस्वि योग्ये शुभे गुहेऽर्हत्प्रतिमा प्रतिष्ठे
आचार्य रत्नं मुनि वैरदेवः विमुक्तयेऽकारय दीर्घ तेजः

प्रयोग भी इसे खोलने में असमर्थ रहे। द्वार का चिन्ह स्पष्ट है, पर कहाजाता है कि पुण्यवान् के विना तामसिक प्रयोगों से यह खुलनेवाला नहीं जो हो यह तो मानना पड़ेगा कि ऊपरी हिस्से में दरारें पड़ जाने पर भी सामने की दीवार का कुछ भी नहीं विगड़ा प्रस्तुत: गुफा के वाहर व भीतर कतिपय लेख खुदे हुए हैं जिन में कुछ ब्राह्मीलिपिके हैं। इन लेखों का परिचय इस प्रकार है—

(१) गुफा में प्रवेश करते ही सामने की सुदृढ़ दीवार पर लगभग ३ फीट लम्बा वड़े वड़े अक्षरों में ब्राह्मीलिपि का लेख खुदा हुआ है।

(२) स्वर्णभण्डार के प्रवेश द्वारपर कई लेख उत्कीर्णित हैं जिनके अक्षर वहुत कम और वड़े वड़े हैं :—

(A) यह १॥ फीट लम्बा है पर अक्षर ७-८ से अधिक नहीं हैं:

(B) इस में कुल ४ अक्षर है।

(C) यह लेख वाहर की दीवाल पर १॥ फीट लंबा और ऊंचा है।

(D) यह लेख गुफा के प्रवेश द्वार के आगे २ पंक्तियों में उत्कीर्णित है। जो इस इस प्रकार पढने में आता है :—

निर्व्वाण लाभाय तपस्वि योग्ये शुभे गुहेऽर्हत्प्रतिमा प्रतिष्ठे
आचार्य रत्नं मुनि वैरदेव: विमुक्तयेऽकारय दीर्घ तेज:

कुछ चिन्ह अंकित मिले हैं। इनमें स्वस्तिक चिन्ह सर्वथा उलटा और प्रचीन होते हुए कला से सर्वथा शून्य है।

स्वर्णभंडार से संलग्न एक और नयी गुफा निकली है जिसके ऊपर छत नहीं है। इस गुफा की दीवाल में कतिपय जैन प्रतिमाएं पद्मासन ध्यानस्थ बनी हुई हैं। यहां छोटे छोटे लेख खुदे हुए हैं जिनका परिचय निम्नांकित है :—

(१) यह लेख एक फुट लंबा है जिस पर "स र नि क पो—" पढने में आता है। यह लेख गुप्तलिपि में है जो अनुमानतः चौथी पांचवीं शदी का होना चाहिये।

(२) यह १।। फुट लंबा है

(३) यह ३।। इंच लंबा है जिसमें कुल ३ अक्षर हैं:—"अ क ल" यह लेख भी गुप्तलिपि में उत्कीर्णित है।

(४) इस लेख में बड़े बड़े ६ अक्षर हैं

इस गुफा की जैन प्रतिमाएं-जो दीवाल में उत्कीर्णित हैं— की संख्या ६ है जिन में प्रथम कमल पर खड्गासनावस्थित प्रभु प्रतिमा हैं जिसके दोनों ओर पद्मासनस्थ दो जिन प्रतिमाएं हैं। प्रभु के पृष्ट भाग में अशोकवृक्ष छत्रत्रय एवं उभयपक्ष में अधरस्थित देव और तन्निम्न भाग में

कुछ चिन्ह अंकित मिले हैं। इनमें स्वस्तिक चिन्ह सर्वथा उलटा और प्रचीन होते हुए कला से सर्वथा शून्य है।

स्वर्णभंडार से संलग्न एक और नयी गुफा निकली है जिसके ऊपर छत नहीं है। इस गुफा की दीवाल में कतिपय जैन प्रतिमाएं पद्मासन ध्यानस्थ बनी हुई हैं। यहां छोटे छोटे लेख खुदे हुए हैं जिनका परिचय निम्नांकित है :—

(१) यह लेख एक फुट लंबा है जिस पर "स र नि क पो—" पढने में आता है। यह लेख गुप्तलिपि में है जो अनुमानत: चौथी पांचवीं शदी का होना चाहिये।

(२) यह १।। फुट लंबा है

(३) यह ३।। इंच लंबा है जिसमें कुल ३ अक्षर हैं:— "अ क ल" यह लेख भी गुप्तलिपि में उत्कीर्णित है।

(४) इस लेख में बड़े बड़े ६ अक्षर हैं

इस गुफा की जैन प्रतिमाएं-जो दीवाल में उत्कीर्णित हैं— की संख्या ६ है जिन में प्रथम कमल पर खड्गासनावस्थित प्रभु प्रतिमा हैं जिसके दोनों ओर पद्मासनस्थ दो जिन प्रतिमाएं हैं। प्रभु के पृष्ठ भाग में अशोकवृक्ष छत्रत्रय एवं उभयपक्ष में अधरस्थित देव और तन्निम्न भाग में

श्लोक उत्कीर्णित हैं श्लोक की एक एक पंक्ति प्रतिमा के दाहिनी ओर वांयी ओर खुदी हुई है।

ये धम्मा हेतु पभवा तेषां हेतुं तथा गतोयं।
तेषां च यो निरोधो एवं वादि महा समणोः॥

इसके निकटवर्त्ती एक प्राचीन स्तूप का चिन्ह अभी तक विद्यमान है। ऊपर लिखे सभी स्थान वर्त्तमान में सरकारी पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में हैं।

गांव मन्दिर

"राजगिर" गांव में श्वेताम्बर जैनमन्दिर सब से प्राचीन है। कवि जयकीर्ति ने गांव में ३ मन्दिरों का एवं अन्य कवियों ने १ मन्दिर का उल्लेख किया किया है। एक ही विशाल मन्दिर में बने हुए तीन मन्दिरों को संख्या में एक और तीन गिनने से यह भेद रहा है। मन्दिर में प्रवेश करते ही पेढी और तदुपरान्त दादा साहब की देहरी आती है उसमें महाप्रभावक युगप्रधान दादा श्री जिनदत्त सूरिजी महाराज के एवं श्री जिनभद्रसूरिजी की प्राचीन चरणपादुकाएं विराजमान हैं। जिनालय में प्रवेश करते दाहिनी ओर मुनिसुव्रत स्वामी बांये तरफ पार्श्वनाथ स्वामी और ऊपर श्री आदिनाथ प्रभु का मन्दिर है जिनमें बहुत

श्लोक उत्कीर्णित हैं श्लोक की एक एक पंक्ति प्रतिमा के दाहिनी और वांयी ओर खुदी हुई है।

ये धम्मा हेतु पभवा तेषां हेतुं तथा गतोयं।
तेषां च यो निरोधो एवं वादि महा समणोः॥

इसके निकटवर्त्ती एक प्राचीन स्तूप का चिन्ह अभी तक विद्यमान है। ऊपर लिखे सभी स्थान वर्त्तमान में सरकारी पुरातत्त्व विभाग के संरक्षण में हैं।

गांव मन्दिर

"राजगिर" गांव में श्वेताम्बर जैनमन्दिर सब से प्राचीन है। कवि जयकीर्ति ने गांव में ३ मन्दिरों का एवं अन्य कवियों ने १ मन्दिर का उल्लेख किया किया है। एक ही विशाल मन्दिर में वने हुए तीन मन्दिरों को संख्या में एक और तीन गिनने से यह भेद रहा है। मन्दिर में प्रवेश करते ही पेढी और तदुपरान्त दादा साहव की देहरी आती है उसमें महाप्रभावक युगप्रधान दादा श्री जिनदत्त सूरिजी महाराज के एवं श्री जिनभद्रसूरिजी की प्राचीन चरणपादुकाएं विराजमान हैं। जिनालय में प्रवेश करते दाहिनी ओर मुनिसुव्रत स्वामी वांये तरफ पार्श्वनाथ स्वामी और ऊपर श्री आदिनाथ प्रभु का मन्दिर है जिनमें वहुत

कमलासन का इसमें प्रभाव है। प्रभु के उभय पक्ष में दाहिने हाथ में चामर लिये इन्द्र खड़े हैं। तदुपरि दो दो काउसग्ग मुद्रास्थित अर्हन्त प्रतिमाएं उत्कीर्णित हैं। परिकर के ऊपरि-भाग में उभयपक्ष में अलंकृत गजारूढ व्यक्ति मस्तिकाभिषेक करते हुए दिखाई देते हैं जिनके ऊपर आकाश में पुष्पमाला लिए देव अवस्थित हैं। प्रभु के मस्तकपर छत्रत्रय और पृष्ठभाग में पांखड़ियोंवाला भामण्डल विराजमान है।

दूसरी प्रतिमा श्री आदिनाथ प्रभु की अत्यन्त सुन्दर, प्राचीनतम और शिल्पकला का एक अनुपम उदाहरण है। "प्रलंब बाहु सुविशाल लोचनम्" विराजित प्रस्तुत प्रतिमा के मस्तकोपरि सुसज्जित जटाजूट और उभय स्कन्धों पर फैली हुई केशावलि बड़ी ही आकर्षक प्रतीत होती है। प्रभु सिंहासन के ऊपर कमलोपरि विराजमान हैं। वेदीमें उभय-पक्षमें बने हुए वृषभयुगल बड़े पुष्ट और ऊंचा मुख किये प्रभुका मुखकमल निहारते हुए व्यक्त किये हैं, तन्मध्यवर्त्ती देवी अपने चारों हाथों में विभिन्न प्रकार के आयुध लिए बैठी है उसके दाहिनी तरफ अपना दाहिना गोड़ा नीचे कर हाथ में माला धारण किया हुआ भक्त दिखाया गया है। प्रभु के उभयपक्ष में दीर्घकाय चामरधारी इन्द्र खड़े हैं जिनके गले में हार कमर में कंदोला और जनेऊ धारण की हुई है देह

कमलासन का इसमें प्रभाव है। प्रभु के उभय पक्ष में दाहिने हाथ में चामर लिये इन्द्र खड़े हैं। तदुपरि दो दो काउसग्ग मुद्रास्थित अर्हन्त प्रतिमाएं उत्कीर्णित हैं। परिकर के ऊपरि-भाग में उभयपक्ष में अलंकृत गजारूढ व्यक्ति मस्तिकाभिषेक करते हुए दिखाई देते हैं जिनके उपर आकाश में पुष्पमाला लिए देव अवस्थित हैं। प्रभु के मस्तकपर छत्रत्रय और पृष्ठभाग में पांखड़ियोंवाला भामण्डल विराजमान है।

दूसरी प्रतिमा श्री आदिनाथ प्रभु की अत्यन्त सुन्दर, प्राचीनतम और शिल्पकला का एक अनुपम उदाहरण है। "प्रलंब बाहु सुविशाल लोचनम्" विराजित प्रस्तुत प्रतिमा के मस्तकोपरि सुसज्जित जटाजूट और उभय स्कन्धों पर फैली हुई केशावलि बड़ी ही आकर्षक प्रतीत होती है। प्रभु सिंहासन के ऊपर कमलोपरि विराजमान हे। वेदीमें उभय-पक्षमें बने हुए वृषभयुगल बड़े पुष्ट और ऊंचा मुख किये प्रभुका मुखकमल निहारते हुए व्यक्त किये हैं, तन्मध्यवर्त्ती देवी अपने चारों हाथों में विभिन्न प्रकार के आयुध लिए बैठी है उसके दाहिनी तरफ अपना दाहिना गोड़ा नीचे कर हाथ में माला धारण किया हुआ भक्त दिखाया गया है। प्रभु के उभयपक्ष में दीर्घकाय चामरधारी इन्द्र खड़े हैं जिनके गले में हार कमर में कंदोला और जनेऊ धारण की हुई है देह

जैन धर्म मान्य अष्ट प्रातिहार्यान्तर्गत अदृश्य देव दुन्दुभी को भी जैनेतर धर्मों ने खूब अपनाया। दशवीं ग्यारहवीं शदी तक इस प्रान्त में बौद्धधर्म का प्रभाव मध्यान्ह काल में था। विहारप्रान्त में तत्कालीन निर्मित बौद्ध प्रतिमाएं तारा, अवलोकितेश्वर, बोधिसत्त्व बुद्ध व भिन्न २ तांत्रिक देव देवियों की प्रतिकृतियां हजारों की संख्या में प्राप्त हुई हैं और होती जा रही है। जो अब भिन्न २ हिन्दू धर्म मान्य देव देवियों के नाम से पूजी जाती हैं उनमें "ये धम्माबाला बौद्ध श्लोक विद्यमान है। जैन शिल्प के प्रभाव से स्पष्ट प्रभावित है यदि खुदाई का बन्द काम आरंभ किया जाय तो प्रान्त के प्राचीन शिल्प स्थापत्य व संस्कृति पर प्रकाश डालने वाले असंख्य उपादान हस्तगत हो सकते हैं।

एक शान्तिनाथ प्रभु की प्रतिमा भी सं० १५०४ की प्रतिष्ठित है जिसके सिंहासन में उभय पक्ष में हरिण व मध्य में सुसुप्ता स्त्री मूर्ति हाथ जोड़े अवस्थित है।

दूसरे तले के मन्दिर में एकादश गणधर चरण एवं एक श्याम पाषाण की आदिनाथ स्वामी की छोटी पंचतीर्थी प्रतिमा है जिसमें उभयपक्ष में चन्द्रप्रभ व संभवनाथ पद्मासनस्थ एवं नेमिनाथ व महावीर प्रभु की खड़ी प्रतिमाएं हैं, निम्नभाग में चामरधारी इन्द्र व दोनों ओर अधर देव

जैन धर्म मान्य अष्ट प्रातिहार्यान्तर्गत अदृश्य देव दुन्दुभी को भी जैनेतर धर्मों ने खूब अपनाया। दशवीं ग्यारहवीं शदी तक इस प्रान्त में बौद्धधर्म का प्रभाव मध्यान्ह काल में था। विहारप्रान्त में तत्कालीन निर्मित बौद्ध प्रतिमाएं तारा, अवलोकितेश्वर, बोधिसत्त्व बुद्ध व भिन्न २ तांत्रिक देव देवियों की प्रतिकृतियां हजारों की संख्या में प्राप्त हुई हैं और होती जा रही है। जो अब भिन्न २ हिन्दू धर्म मान्य देव देवियों के नाम से पूजी जाती हैं उनमें "ये धम्मावाला बौद्ध श्लोक विद्यमान है। जैन शिल्प के प्रभाव से स्पष्ट प्रभावित है यदि खुदाई का बन्द काम आरंभ किया जाय तो प्रान्त के प्राचीन शिल्प स्थापत्य व संस्कृति पर प्रकाश डालने वाले असंख्य उपादान हस्तगत हो सकते हैं।

एक शान्तिनाथ प्रभु की प्रतिमा भी सं० १५०४ की प्रतिष्ठित है जिसके सिंहासन में उभय पक्ष में हरिण व मध्य में सुसुप्त स्त्री मूर्ति हाथ जोड़े अवस्थित है।

दूसरे तले के मन्दिर में एकादश गणधर चरण एवं एक श्याम पाषाण की आदिनाथ स्वामी की छोटी पंचतीर्थी प्रतिमा है जिसमें उभयपक्ष में चन्द्रप्रभ व संभवनाथ पद्मासनस्थ एवं नेमिनाथ व महावीर प्रभु की खड़ी प्रतिमाएं हैं, निम्नभाग में चामरधारी इन्द्र व दोनों ओर अधर देव

गांव मन्दिर—संग्रहालय

गांव मन्दिर में सामने वाला कमरा "संग्रहालय" है। यहां १७ चरण पादुकाएं एवं २० जिन प्रतिमा विराजमान हैं जिनके कुछ अभिलेख बाबू पूरणचन्द जी नाहर ने लेखाङ्क २३६, २४०, २४८, २६१, २६२, २६४, २६५, २६६, २६७, १८४७ में प्रकाशित किये हैं। अप्रकाशित लेखों में कई महत्त्वपूर्ण हैं, निम्नोक्त लेख श्री गौड़ी पार्श्वनाथ जिनेश्वर की प्रतिमापर उत्कीर्णित है जिस के निर्माता जगतसेठ महताबराय की भार्या शृङ्गारदेवी और प्रतिष्ठास्थान राजगृह है।

॥ सं० १८२२ वर्षे मिती भाद्रपद शुक्ल अष्टम्यां शनिवासरे। सुश्रावक पुण्य प्रभावक श्री जगत सेठ जी महताबराय जी गहेलड़ा गोत्रे तद् भार्या श्री सिणगारदेवी प्रतिमा प्रतिष्ठितं श्री राजगृह नगरे॥ दर्शनात् मोक्ष पदं लभ्यते॥ श्री गौड़ी पार्श्वनाथ जी

अत्रास्थित मूर्तियां व चरण पांचो पहाड़ों के मन्दिरों से जीर्णोद्धारादि के कारण लाकर विराजमान किये गये हैं। इनमें से कइयों का परिचय आगे आचुका है अवशिष्ट कुछ मूर्त्तियों का परिचय दिया जाता है।

वैभारगिरि के उत्तुंग शिखर जो गौतमस्वामी की टूंक नामसे विख्यात है—के जिनालय की श्री महावीर

गांव मन्दिर—संग्रहालय

गांव मन्दिर में सामने वाला कमरा "संग्रहालय" है। यहां १७ चरण पादुकाएं एवं २० जिन प्रतिमा विराजमान हैं जिनके कुछ अभिलेख बाबू पूरणचन्द जी नाहर ने लेखाङ्क २३६, २४०, २४८, २६१, २६२, २६४, २६५, २६६, २६७, १८४७ में प्रकाशित किये हैं। अप्रकाशित लेखों में कई महत्त्वपूर्ण हैं, निम्नोक्त लेख श्री गौड़ी पार्श्वनाथ जिनेश्वर की प्रतिमापर उत्कीर्णित है जिस के निर्माता जगतसेठ महतावराय की भार्या शृङ्गारदेवी और प्रतिष्ठास्थान राजगृह है।

॥ सं० १८२२ वर्षे मिती भाद्रपद शुक्ल अष्टम्यां शनिवासरे। सुश्रावक पुण्य प्रभावक श्री जगत सेठ जी महतावराय जी गहेलड़ा गोत्रे तद् भार्या श्री सिणगारदेवी प्रतिमा प्रतिष्ठितं श्री राजगृह नगरे॥ दर्शनात् मोक्ष पदं लभ्यते॥ श्री गौड़ी पार्श्वनाथ जी

अत्रास्थित मूर्तियां व चरण पांचो पहाड़ों के मन्दिरों से जीर्णोद्धारादि के कारण लाकर विराजमान किये गये हैं। इनमें से कइयों का परिचय आगे आचुका है अवशिष्ट कुछ मूत्तियों का परिचय दिया जाता है।

वैभारगिरि के उत्तुंग शिखर जो गौतमस्वामी की टूंक नामसे विख्यात है—के जिनालय की श्री महावीर

प्रवचन मुद्रा, परिनिर्वाणमुद्रादि नाना मुद्राएं पायी जाती है जब कि जैनों में तीर्थंकर मूर्तियां केवल पद्मासन और खड्गासन की ही प्राप्य है हां ! दक्षिण की कुछ मूर्त्तियां अर्द्धपद्मासन मुद्रा में भी विद्यमान है। तेरहवीं शदी के वाद या मुसलमानों के आगमन के वाद भारतीय शिल्पकार का मूर्ति निर्माण के समय हाथ जैसा काम करता था मस्तिष्क और हृदय वैसा नहीं। आज जयपुर जैसे नगरों में जब कि दिन-रात कारखाने चल रहे हैं और मूर्तियों की फसलें उतर रही हैं ऐसी स्थिति में हम कहां से कलाकार का हृदय मूर्ति में प्रतिविम्बित पा सकते हैं ? अस्तु, प्रस्तुतः प्रतिमा गुप्तकालीन मालूम होती है, प्रभु के सिंहासन में उभयपक्ष में सिंह बने हुए हैं। प्रभु महावीर की प्रतिमा होने के कारण मध्यवर्ती लांछन भी सिंह उत्कीर्णित हैं। तदुपरि कमलासनस्थित वेदी पर प्रभु विराजमान है उभयपक्ष में बने हुए इन्द्र वड़े ही सुन्दर और दीर्घ लंवकाय है। उनके शरीर पर पहने हुए अलंकार तत्कालीन समाज में प्रचलित वस्त्रालंकार प्रथा के स्पष्ट प्रतीक हैं उनके मस्तकोपरि मुकुट कर्णों में कुण्डल गले में हार भुजाओं में भुजवंद, कर कंकण, कमर में कंदोला आदि वड़ी खूबी के साथ अंकित है। दोनों इन्द्रों

प्रवचन मुद्रा, परिनिर्वाणमुद्रादि नाना मुद्राएं पायी जाती है जब कि जैनों में तीर्थंकर मूर्तियां केवल पद्मासन और खड्गासन की ही प्राप्य है हां! दक्षिण की कुछ मूर्त्तियां अर्द्धपद्मासन मुद्रा में भी विद्यमान है। तेरहवीं शदी के वाद या मुसलमानों के आगमन के वाद भारतीय शिल्पकार का मूर्ति निर्माण के समय हाथ जैसा काम करता था मस्तिष्क और हृदय वैसा नहीं। आज जयपुर जैसे नगरों में जब कि दिन-रात कारखाने चल रहे हैं और मूर्तियों की फसलें उतर रही हैं ऐसी स्थिति में हम कहां से कलाकार का हृदय मूर्ति में प्रतिबिम्बित पा सकते हैं? अस्तु, प्रस्तुतः प्रतिमा गुप्तकालीन मालूम होती है, प्रभु के सिंहासन में उभयपक्ष में सिंह बने हुए हैं। प्रभु महावीर की प्रतिमा होने के कारण मध्यवर्ती लांछन भी सिंह उत्कीर्णित हैं। तदुपरि कमलासनस्थित वेदी पर प्रभु विराजमान है उभयपक्ष में बने हुए इन्द्र बड़े ही सुन्दर और दीर्घ लंबकाय है। उनके शरीर पर पहने हुए अलंकार तत्कालीन समाज में प्रचलित वस्त्रालंकार प्रथा के स्पष्ट प्रतीक हैं उनके मस्तकोपरि मुकुट कर्णों में कुण्डल गले में हार भुजाओं में भुजबंद, कर कंकण, कमर में कंदोला आदि बड़ी खूबी के साथ अंकित है। दोनों इन्द्रों

अवस्थित हैं। प्रभु के मस्तक पर छत्र विराजमान है जिसके उभयपक्ष में अदृश्य देव-दुन्दुभि दिखायी देती है। एक प्रतिमा सप्तफणमण्डित पार्श्वनाथ स्वामी की है जिसके निम्नभाग में सिंहासन के ऊपर गुंथी हुई सर्पाकृति प्रभु के पृष्ट भाग में भुजाओं के पीछे से हो स्कंध प्रदेश से ऊपर जाकर सप्तफणमय छत्राकृति हो गयी है तदुपरि छत्रत्रय विराजमान है प्रस्तुत: प्रतिमा के सिंहासन में उभय पक्ष में चैत्यवन्दना करती भक्त जोड़ी एवं परिकर के ऊपरि भाग में चामरधारी अवस्थित हैं। एक प्रतिमा वैभारगिरि छट्ठे मन्दिर की भी अति प्राचीन और कमलासनोपरि विराजमान है, ऊपर तोरण की आकृति बनी हुई है। प्रस्तुत: प्रतिमा के उभयपक्षस्थ स्तंभोपरि पट्टिका में दाहिनी करवट सुसुप्त स्त्री-मूर्त्ति विद्यमान है जो त्रिशला माता मालूम देती है। इनका दाहिना हाथ मस्तक के नीचे और बांया हाथ सीधा किया हुआ जंघापर रखा हुआ है। इसी शैली की जिनालय मण्डित ७ प्रतिमाएं हैं जिन में कई पद्मासन व कई खड्गासन की हैं। ऋषभदेव प्रभु की खंडित प्रतिमा के सिंहासन में दोनों ओर वृषभ एवं मध्य में चार भुजावाली एक पद्मासनस्थ देवी है इस प्रतिमा पर 'देय धर्म्मोयं महुमलवालह् कस्य' लेख खुदा है।

अवस्थित हैं। प्रभु के मस्तक पर छत्र विराजमान है जिसके उभयपक्ष में अदृश्य देव-दुन्दुभि दिखायी देती है। एक प्रतिमा सप्तफणमण्डित पार्श्वनाथ स्वामी की है जिसके निम्नभाग में सिंहासन के ऊपर गुंथी हुई सर्पाकृति प्रभु के पृष्ट भाग में भुजाओं के पीछे से हो स्कंध प्रदेश से ऊपर जाकर सप्तफणमय छत्राकृति हो गयी है तदुपरि छत्रत्रय विराजमान है प्रस्तुत: प्रतिमा के सिंहासन में उभय पक्ष में चैत्यवन्दना करती भक्त जोड़ी एवं परिकर के ऊपरि भाग में चामरधारी अवस्थित हैं। एक प्रतिमा वैभारगिरि छट्ठे मन्दिर की भी अति प्राचीन और कमलासनोपरि विराजमान है, ऊपर तोरण की आकृति वनी हुई है। प्रस्तुत: प्रतिमा के उभयपक्षस्थ स्तंभोपरि पट्टिका में दाहिनी करवट सुसुप्त स्त्री-मूर्त्ति विद्यमान है जो त्रिशला माता मालूम देती है। इनका दाहिना हाथ मस्तक के नीचे और बांया हाथ सीधा किया हुआ जंघापर रखा हुआ है। इसी शैली की जिनालय मण्डित ७ प्रतिमाएं हैं जिन में कई पद्मासन व कई खड्गासन की हैं। ऋषभदेव प्रभु की खंडित प्रतिमा के सिंहासन में दोनों ओर वृषभ एवं मध्य में चार भुजावाली एक पद्मासनस्थ देवी है इस प्रतिमा पर 'देय धर्म्मोयं महुसलवालह कस्य' लेख खुदा है।

क्रमादि पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ सकता है। धर्मचक्र का चिन्ह जो आज राष्ट्र का प्रधान प्रतीक है और अशोक का कहा जाता है—जैन धम का एक प्रधान सांस्कृतिक चिन्ह है राजगृह की मूर्तियों में धर्मचक्र प्रचुरता से पाया जाता है तीर्थंकर के समक्ष धर्मचक्र चलता था और ऋषभदेव प्रभु के पधारने की स्मृति में वाहुवलि ने तक्षशिला में स्थापित किया था। आज जैनसमाज चाहे धर्मचक्र के चिन्ह को भूल गया हो पर राजगृह की प्राचीनतम प्रतिमाएं एवं तन्निहित इस प्रकार की सांस्कृतिक चेतनाएं हुए चिरकाल अनुप्राणित करती रहेंगी।

शान्ति-भवन

पुरातत्त्व प्रेमी सुप्रसिद्ध संग्राहक स्वनामधन्य स्वर्गीय बावू पूरणचंद्र जी नाहर का यह निजी स्थान है। इसके अहाते में प्रवेश करने पर खूब विशाल मैदान है जिसके दाहिनी ओर ऊँचे विशाल स्थान को स्वर्गीय कलाप्रेमी नाहर जी ने पुरातत्त्व वाटिका का रूप दे दिया है। इसमें निर्मित क्यारियों के मध्य में नाना प्रकार के बौद्ध स्तूपों को संग्रहीत कर उन्हें इटों की वेदियां बना कर तदुपरि सुशोभित कर दिये हैं इन स्तूपों में अधिकांश भगवान

क्रमादि पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ सकता है। धर्मचक्र का चिन्ह जो आज राष्ट्र का प्रधान प्रतीक है और अशोक का कहा जाता है—जैन धम का एक प्रधान सांस्कृतिक चिन्ह है राजगृह की मूर्तियों में धर्मचक्र प्रचुरता से पाया जाता है तीर्थंकर के समक्ष धर्मचक्र चलता था और ऋषभदेव प्रभु के पधारने की स्मृति में बाहुबलि ने तक्षशिला में स्थापित किया था। आज जैनसमाज चाहे धर्मचक्र के चिन्ह को भूल गया हो पर राजगृह की प्राचीनतम प्रतिमाएं एवं तन्निहित इस प्रकार की सांस्कृतिक चेतनाएं हुए चिरकाल अनुप्राणित करती रहेगी।

शान्ति-भवन

पुरातत्त्व प्रेमी सुप्रसिद्ध संग्राहक स्वनामधन्य स्वर्गीय बाबू पूरणचंद्र जी नाहर का यह निजी स्थान है। इसके अहाते में प्रवेश करने पर खूब विशाल मैदान है जिसके दाहिनी ओर ऊँचे विशाल स्थान को स्वर्गीय कलाप्रेमी नाहर जी ने पुरातत्त्व वाटिका का रूप दे दिया है। इसमें निर्मित क्यारियों के मध्य में नाना प्रकार के बौद्ध स्तूपों को संग्रहीत कर उन्हें इटों की वेदियां बना कर तदुपरि सुशोभित कर दिये हैं इन स्तूपों में अधिकांश भगवान

करते हैं, यही कारण है कि मनोरंजन के प्राकृतिक उपादान और इस स्वास्थप्रद स्थान में खासकर शीतकाल में विशाल धर्मशालाएं भी जनसमूह से आकीर्ण होकर संकुचित प्रतीत होने लगती हैं। इस पवित्र भूमि में विचरण करने वाले के हृदय में भगवान महावीर, बुद्ध आदि महापुरुषों की स्मृति ताजी हो जाती है और उसके द्वारा हृदयगत उदात्त आत्मतत्त्वों के विकाश को बड़ा प्रोत्साहन मिलता है। यहाँ के पहाड़ोंकी गुफाओं में खास कर वहाँ, जहाँ जनता का बिल्कुल आवा-गमन नहीं होता— एकान्त प्रदेशोंमें योगी लोग अपने योग-साधनके अनुकूल स्थान चुनकर योगाभ्यास व आत्मध्यान में तल्लीन हो जाते हैं। सुप्रसिद्ध योगीश्वर श्रीचिदानन्दजी महा-राज ने भी सं० १६३३-३४ में यहाँ जो अनुभव प्राप्त किया उन्हीं के शब्दों में स्याद्वादानुभवरत्नाकर से यहाँ उद्धृत किया जाता है "दो चार दिन पीछे जब मैं विहारमें गया तो ऐसा सुना कि 'राजगिरी में बहुत से साधु गुफाओं में रहते हैं'। इसलिये मेरी भी इच्छा हुई कि उनसे अवश्य करके मिलूं। ऐसा विचार कर उन पहाड़ों की तरफ रवाना हुआ। फिर दिनमें तो राजगिरी में आहार पानी लेता और रात को पहाड़ के ऊपर चला जाता। सो कई दिन पीछे एक रात्रि में एक साधु को एक जगह बैठा हुआ देखा। मैं पहले तो दूर बैठा

करते हैं, यही कारण है कि मनोरंजन के प्राकृतिक उपादान और इस स्वास्थप्रद स्थान में खासकर शीतकाल में विशाल धर्मशालाएं भी जनसमूह से आकीर्ण होकर संकुचित प्रतीत होने लगती हैं। इस पवित्र भूमि में विचरण करने वाले के हृदय में भगवान महावीर, बुद्ध आदि महापुरुषों की स्मृति ताजी हो जाती है और उसके द्वारा हृदयगत उदात्त आत्मतत्त्वों के विकाश को बड़ा प्रोत्साहन मिलता है। यहां के पहाड़ोंकी गुफाओं में खास कर वहां, जहां जनता का बिलकुल आवा-गमन नहीं होता— एकान्त प्रदेशोंमें योगी लोग अपने योग-साधनके अनुकूल स्थान चुनकर योगाभ्यास व आत्मध्यान में तल्लीन हो जाते हैं। सुप्रसिद्ध योगीश्वर श्रीचिदानन्दजी महा-राज ने भी सं० १९३३-३४ में यहां जो अनुभव प्राप्त किया उन्हीं के शब्दों में स्याद्वादानुभवरत्नाकर से यहां उद्धृत किया जाता है "दो चार दिन पीछे जब मैं विहारमें गया तो ऐसा सुना कि 'राजगिरी में बहुत से साधु गुफाओं में रहते हैं'। इसलिये मेरी भी इच्छा हुई कि उनसे अवश्य करके मिलूं। ऐसा विचार कर उन पहाड़ों की तरफ रवाना हुआ। फिर दिनमें तो राजगिरी में आहार पानी लेता और रात को पहाड़ के ऊपर चला जाता। सो कई दिन पीछे एक रात्रि में एक साधु को एक जगह बैठा हुआ देखा। मैं पहले तो दूर बैठा

परन्तु तुमको इन बातों से क्या प्रयोजन है? जो बात हमनें तुमको कह दी है, यदि तुम उसको करोगे तो तुमको आपही श्री वीतराग के धर्म का अनुभव हो जायगा, किन्तु हमारा यही कहना है कि परवस्तु का त्याग और स्व वस्तु का ग्रहण करना और किसी भेषधारी की जाल में न फंसना। इतना कह कर वह वहां से चला गया।"

योगिराज श्रीचिदानंदजी ने राजगृह से उपर्युक्त योगी के निर्देशानुसार पावापुरीतीर्थ में जाकर ११ दिन के ध्यान द्वारा आत्मानुभव रसास्वादन किया था।

यहाँ हमेशा से शासकों द्वारा तीर्थक्षेत्र को सहाय्य-सुविधाएं मिलती रही हैं। बादशाह पीरोजसाह के समय का वर्णन आगे किया जा चुका है। सम्राट अकबर ने अन्य तीर्थों की भांति राजगृह के ५ पहाड़ भी श्वेताम्बर जैनों के आधीन कर दिये थे। सतरहवीं शती के सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हीरविजयसूरिजी को० सं० १६४६ वै० सु० १५ (सन् १५९२ ता०-१६ अप्रेल) तदनुसार ता०-७ उर्दी बेहेस्त रविउल अवल सन् ३७ जुलसी को दिये हुए फरमान में—जिसे मुनि जिनविजयजी ने कृपारसकोश में प्रकाशित किया है—स्पष्ट उल्लेख है। अब तो पूजनीय मन्दिरों पर ही जैनों का अधिकार रहा है प्राचीन मन्दिर

परन्तु तुमको इन बातों से क्या प्रयोजन है ? जो बात हमनें तुमको कह दी है, यदि तुम उसको करोगे तो तुमको आपही श्री वीतराग के धर्म का अनुभव हो जायगा, किन्तु हमारा यही कहना है कि परवस्तु का त्याग और स्व वस्तु का ग्रहण करना और किसी भेषधारी की जाल में न फंसना। इतना कह कर वह वहां से चला गया।"

योगिराज श्रीचिदानंदजी ने राजगृह से उपर्युक्त योगी के निर्देशानुसार पावापुरीतीर्थ में जाकर ११ दिन के ध्यान द्वारा आत्मानुभव रसास्वादन किया था।

यहां हमेशा से शासकों द्वारा तीर्थक्षेत्र को सहाय्य-सुविधाएं मिलती रही हैं। बादशाह पीरोजसाह के समय का वर्णन आगे किया जा चुका है। सम्राट अकबर ने अन्य तीर्थों की भांति राजगृह के ५ पहाड़ भी श्वेताम्बर जैनों के आधीन कर दिये थे। सतरहवीं शती के सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्री हीरविजयसूरिजी को० सं० १६४६ वै० सु० १५ (सन् १५९२ ता०-१६ अप्रैल) तदनुसार ता०-७ उर्दी बेहेस्त रविउल अवल सन् ३७ जुलसी को दिये हुए फरमान में—जिसे मुनि जिनविजयजी ने कृपारसकोश में प्रकाशित किया है—स्पष्ट उल्लेख है। अब तो पूजनीय मन्दिरों पर ही जैनों का अधिकार रहा है प्राचीन मन्दिर

पर वज्र चिन्ह स्पष्ट है। तदुपरि अधरस्थित पुष्पमालाधारी देव अवस्थित है जिनके ऊपर अदृश्य देव दुन्दभि दिखायी गयी है। कमलासन के निम्नभाग में उत्कीर्णित निम्नोक्त अभिलेख है जो सहस्राब्दी प्राचीन है। इसमें निर्माणकाल या प्रतिष्ठापक आचार्य का नाम न होकरकेवल निर्माता का नाम ही लिखा है :—देय धम्मोयं जलाहलकस्य" भामंडल विद्यमान है सिंहासन के कोने में चिन्ह निर्मित है। इसके छत्रत्रय का अंश खंडित हो गया हैं।

हम जैन और बौद्ध प्रतिमाओं में 'देय धम्मोयं' तथा 'देव धम्मोयं व दे धम्मोयं' शब्द का व्यवहार प्राचीन प्रतिमाओं में समान रूपसे पाते हैं। उस जमाने में देवताओं की मान्यता अधिक थी और उनके मान्य धर्म को श्रेष्ठ समझा जाता था। इसी तरह जैन और बौद्ध साहित्य में देवाणुप्पिय" शब्द प्रिय और सम्मान सूचक वाक्यार्थ में लिया गया है। दूसरा रूप "देयधम्मोयं" है जो दान धर्म की विशेषता सूचित करता है। पड़ोसी धर्म संस्कृति की छाप बहुधा पड़ती ही है। गुप्तकाल में सभी धर्मों के स्थापत्य में कमल की प्रचूरता थी कमल भारतीय संस्कृति का प्रतीक था। तीर्थंकरों के कमल पर विराजने व स्वर्ण कमल पर विचरने के उल्लेख जैन-शास्त्रों में हैं इसी तरह